ज्ञान भंडार

॥ चारो भाग ॥

साहित्य विभाग, वानप्रस्थ, जीवन मुक्ति विवेक, उपनिषद, संन्यास प्रकरण, आतुर संन्यास ।

लेखक व प्रकाशक:—

श्री स्वामी पूर्णानन्द तीर्थ,

भिनगा दण्डी आश्रम,

लंका, बनारस

२५० प्रतियां १९९९ मूल्य केवल प्रेम

अनुक्रमणिका

दूसरा भाग

पहिला भाग

आ

दूसरा भाग

आ

पहिला भाग

इ

दूसरा भाग

इ

पहिला भाग

उ

दूसरा भाग

उ

पहिला भाग

ए

पहिला भाग

पहिला भाग

दूसरा भाग

पहिला भाग

दुसरा भाग

द

पहिला भाग

पहला भाग

दुसरा भाग

पहला भाग

दुसरा भाग

दुसरा भाग

ब

पहला भाग

भ

दुसरा भाग

भ

पहला भाग

पहला भाग

दुसरा भाग

पहिला भाग

दुसरा भाग

पहिला भाग

दूसरा भाग

व

पहिला भाग

श

श

दूसरा भाग

दूसरा भाग

पहिला भाग

दूसरा भाग

स

पहिला भाग

दूसरा भाग

ह

पहिला भाग

क्ष

दूसरा भाग

क्ष

क्ष

दूसरा भाग

त्र

दुसरा भाग

ज्ञ

ज्ञ

❀ श्रीः ❀

ज्ञान भण्डार

साहित्य-विभाग

लेखक व प्रकाशकः—

श्री स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ

भिनगादण्डो आश्रम

लंका, बनारस।

५०० प्रतियां

श्री विश्वनाथजी

* ॐ *
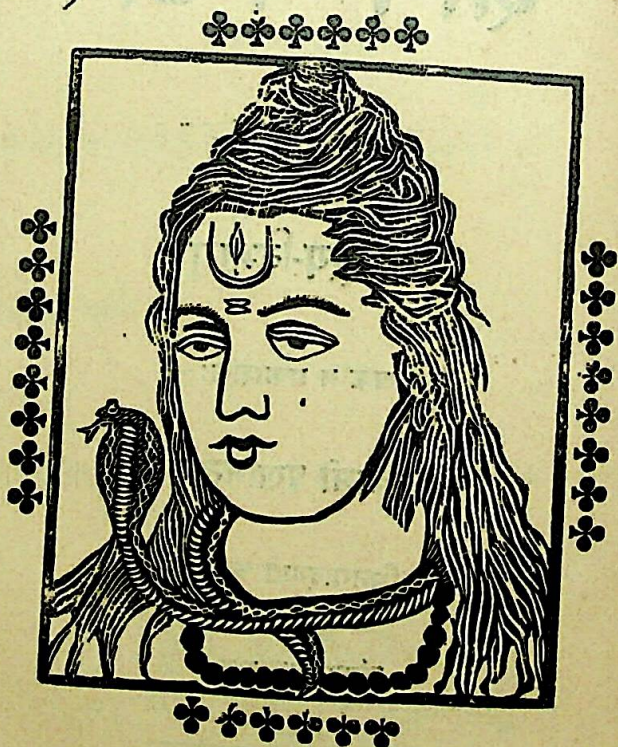
ज्ञान भण्डार साहित्य

पहला भाग

भद्रं कर्णेभिःश्रृणुयामदेवा, भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्ठुवाँ सस्तनुभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥१॥

अर्थः—अपने कानों से काल्याणकारक सुनिये और आंखों से कल्याण देखिये, पूजन करने वालों की रक्षा करनेवाला दृढ़ अङ्गों से स्तुति करने वालों को देवता दीर्घायु प्रदान करने वाले हों।

ॐ विघ्नध्वान्तनिवारणै कतरणिर्विघ्नटवीहव्यवाट् ।
विघ्न व्यालकुलोभिमर्दगरुडो विघ्नेभपंचानन ॥
विघ्नोत्तुंगगिरी प्रभेदनपविर्विघ्नावुधौ वाडवौ ।
विघ्ना घौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातुनः ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

विघ्न रूपी अन्धकार को हटाने में सूर्य के सदृश विघ्न रूपी बन में अग्नि के सदृश. विघ्न रूपी सर्प कुल के मर्दन करने में गरुड़ के सदृश, विघ्न रूपी हाथी के लिये सिंह के सदृश विघ्न रूपी ऊँचे क तोड़ने के लिये वज्र के सदृश, विघ्न रूपी पाप समूह के मेघ क उड़ाने में प्रचण्ड वायु सदृश, विघ्नेश्वर श्रीगणेश हमलगों का पालन करें।

❀ हरि ॐ तत्सत् ❀

श्रीसद् गुरुभ्यो नमः

प्रस्तावना

प्रिय पाठक गण !

आज काल भारत वर्ष मां अविद्याए साम्राज्य स्थाप्युं छे, ने विद्वान वग छे पण बहु थोड़ा छे ने जे छे ते पेट निर्वाहना काम मां मच्यारहे छे तेथी निवृत्ति परायण तो बहुत थोड़ा पुरुषो जोवा मां आवे छे ।

ने तेमांपण धार्मिक वृत्ति ना तो अत्यन्त थोड़ा ने तेमां पण परोपकार साथे आस्तिक्य बुद्धि वाला तो कोइ विरलाज होयछे ।

आ शरीर यतिनी स्थिति मां (दंडी संन्यासी तरीके) होवाथी श्री काशीजीथी द्वारकां यात्रा प्रसंगे आवेल ते यात्रा करी पाछा फरतां वच्चे जामनगर जेयुं धार्मिक स्थल जाणीने चातुर्मासनो निश्चय कर्यो ।

अहीं आवीने पंडित वर्गनी मुलाकात लेतां अहीं छेवटे हाथी भाइ शास्त्री जी पूण श्रद्धालु परोपकारी तेमां वयोवृद्ध तेमज ज्ञान वृद्ध जाइने चित्त बहु प्रसन्न थयुं ।

त्यार बाद तेओ श्रीनुं प्रेमाल हृदय जाणी आ लखेल पुस्तक छपाववा इच्छा बतावी तो ते पूरी खुशीथी स्वीकारी बादतेओ श्रीनोकैलासवास थइजतां बंधरमु ।

पीछे श्री काशीजी आकर यह पुस्तक चन्दा करके छपाने का विचार किया।

परन्तु मामूली रकम मिलने से छप नहीं सकता इसलिए हम धनवाद गये, वहां के सेठ बड़े धार्मिक वृत्ति के मिल गये। उन्होंने अपना नाम छापने को मना किया है इसलिये हम नाम नहीं दे सकते किन्तु वे बड़े श्रद्धालु हैं और विद्वान हैं, इतना कह सकते हैं कि आपने ये पुस्तक छपा देने का बचन दिया है इसलिये आपको धन्यवाद देते हैं।

मानुष्ये मतिदुर्लभा पुरुषता पुरुस्त्वे पुनरविप्रता।
विप्रत्वे बहुविद्यनाति गुणिता विद्यायतोर्थज्ञिता॥
अर्थज्ञस्य विचित्र वाक्य पटुता तत्रापि लोकज्ञता।
लोकाज्ञस्य समस्त शास्त्र विदुषो धर्मेमतिदुर्लभा॥

अर्थ—मनुष्य जन्म तेमां बुद्धिशाली ने तेमां पुरुषता ने तेमां ब्राह्मणपणु ने तेमां विद्वान ने तेमां गुणवान ने तेमां अर्थजाणवावाला तेमां अति चतुर बोलवावाला तेमां सर्व जनता ने प्रिय ने तेमां सर्व शास्त्र जाणनार नेतेमांपण धर्मिष्ट बुद्धि ते अति दुर्लभछे। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

आ पुस्तकमां प्रथम भाग सहित्यनो राखी, बीजो भाग मनुस्मृति मांथी वानप्रस्थ स्थितिनो चितार आपी त्रीजोभाग वेदान्तनो (उपनिषदो श्रुति बचनोनो) राखी चौथोभाग जीवनमुक्ति विवेकनो राखी छेल्ले सन्यस्तनो जरा चितार आपीने संन्यासीना भिक्षा प्रकरणनो बतावी ने आ पुस्तकनी समाप्ति करवामां आवेलछे। आथी

करी भारतवर्षमां जे अगाउ सद्गुणों हता ते नष्ट जेवातथा जाणी ने तेमां अजवालुं पाडवा धार्यु छे। यदि बहु जनता दीन दुःखोत, पराधीन, दरिद्रि तथा अनर्थकारी होवाथी ते कइंपण छुटीने सद्-गुण ग्राही थाय तो मारोश्रम सफल थयो गणाय एम मानु छुं।

कदी वाचक वर्गने कोइ श्लोकमां अथवा अर्थमां खामी जणा-यतो तेने विषे नम्र याचना छे के संपूर्ण गुणवाला दोष रहित तो एक परमात्माज छे तो क्षन्तव्ययाचुं छुं आमां सुधारो वधारो कर-वानी सत्ता लेखकने स्वाधीन छे।

आ पुस्तकना सर्वहक लेखकने स्वाधीन छे तोपण कोइ परोपकारी पुरुष बिना मुलये बाटणी करवाने कबूल करशेतो तेने छपाववानी लेखित परवानगी खुशि थी आपवा मां आवशे।

ॐ पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवा वशिष्यते ॥ १ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्री १०८ परिव्राजकाचार्य श्रीगोविंदानंदजी तीर्थ

पाद पंकजरजोक्ति

लेखक—स्वामी पूर्णानन्द तीर्थ

मुमुक्षु भुवन अस्सी घाट, काशी।
हाल भिनगाश्रम दण्डी आश्रम पो०—लङ्का, बनारस।
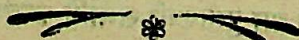
श्री स्वामी पूर्णानन्दजी तीर्थ

मुमुक्षु भुवन, अस्सी घाट, काशी।

हाल–भिनगाश्रम, दण्डी आश्रम, पो० लङ्का, बनारस।

ज्ञान भंडार ।

साहित्य प्रकरण भाग १

उत्तमः चिंतितं कुर्यात् मोक्तकारी तु मध्यमः ॥
अधमोः श्रद्धया कुयात् अकर्तुः उच्चरितः पितु ॥१॥

अर्थ—पिता की इच्छा से जो काम पूरा करता है, वह पुत्र उत्तम है। पिता की आज्ञा मानकर जो कार्य करे वह पुत्र मध्यम है। अश्रद्धा से करने वाला पुत्र अधम है। जो कहने पर भी नहीं करता वह पुत्र विष्टा के समान है।

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं ।
श्वा लब्धा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ॥
सिंहो जंबुकमंकमागतमपि त्यत्क्वा निहन्ति द्विपं ।
सर्वः कृच्छगतोपि वां च्छति जनः सत्वानुरूपं फलं ॥२॥

कुत्ता बिना मांस और बिना खून की हड्डी लेकर उसी में सन्तोष मानता है परन्तु उसमें उसकी क्षुधा तृप्त नहीं होती लेकिन सिंह अपने हाथ में आये हुये श्रृगाल को

छोड़कर हाथी को ही मारता है इसी तरह श्रेष्ठ पुरुष क्षुद्र काम को छोड़ कर उत्तम काम करते हैं ।

ददतु ददतु गालीं गालियमन्तो भवन्तः ।
वयमपि तदभावात् गालिदाने समर्था ॥
जगति विदितमेतद्दीयते यस्ययद्वै ।
नहि शशकविषाण कोऽपि कस्मै ददाति ॥३॥

अर्थ—यदि आप गाली देते हों तो दें, आप गाली के ही धनी हैं, क्यों कि जिसके पास जो वस्तु होती है वह उसको ही दान करता है, क्यों कि आज तक खरगोश (सियाल) का सिंग किसी ने दान नहीं किया ।

न कश्चिच्चण्डकोपाना मात्मीयो नाम भूभुजाम् ॥
होता रमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥ ४ ॥

अर्थ—उग्रकोप वाले राजा का कोई भी निजी आदमी नहीं होता, क्यों कि इसी तरह से अग्नि हवन करने वाले को भी छूने से जला देती है ।

बुभुक्षितः किन करोति पापम् क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति ॥
आख्याहि भद्रे प्रियदर्शनस्य न गंगदत्तः पुनतरेति कूपम् ॥५॥

अर्थ—भूखा मनुष्य क्या दांव नहीं करता है यदि किसी का मनुष्य मर गया हो तो उसमें करुणा नहीं होती। हे भद्रे !

है दशनीया गंगदत्त सब कुछ करके भी कुयें में नहीं जायगा यह कह देना।

स्त्री विनश्यतिरूपेण ब्राह्मणो राजसेवया ॥

गावो दूरप्रचारेण हिरण्यं लोभलिप्सया ॥ ६ ॥

अर्थ—अतिरूपसे स्त्री का नाश होता है। राज सेवा करने से ब्राह्मण पनका नाश होता है गऊ को दूर चराने से और पैसे केलोभ से नाश होता है।

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजंगमः ॥

हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः॥ ७ ॥

अर्थ—हाथी स्पर्श करने वाले को मारता है और सांप सूंघते ही काटता है राजा हंसता हुआ भी मार देता है। दुर्जन से अगर मान भी करो तो भी मार देता है।

भैरवो त्रिमला देवी जगन्नाथस्तु भैरव।

प्राप्ते भैरवीं चक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः॥

समाप्ते भैरवी चक्रे सर्वेवर्णा पृथक् पृथक् ॥८॥

अ० लक्ष्मी देवी भैरवी है जगन्नाथ जी भैरव है भैरवी चक्रमें फंसकर जब वर्ण विजाति हो जाते हैं बाद में जब वह भैरवी चक्रसे छूटते हैं तो सब वर्ण पृथक २ हो जाते हैं।

अज्ञस्यार्थं प्रबुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत् ॥

महानिरयजालेषु स तेन निरयो जितः ।९॥

अशुद्ध अन्तःकरणवाला तथा विषयासक्त मनुष्य कर्म का अधिकारी है। जो अर्धदग्ध अज्ञानी पुरुष है उसको "सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥ को उपदेश नहीं देना चाहिये वह उसका अधिकारी नहीं। जो अनाधिकारी पुरुष को उपदेश करता है वह उसको नरक में गिराता है ॥ ९ ॥

गौरतेजो बिना यस्तु श्याम तेज समर्चयेत् ॥
जपेन वा ध्यायतेवापि स भवेत् पातकी शिवे। १० ॥

शक्ति के बिना जो श्याम नाम स्मरण करता है। [राधा के नाम के विना केवल कृष्ण नाम का स्मरण करता है) वह पातकी होता है। इसी प्रकार सर्व देवों के नाम के साथ उनकी शक्ति का नाम भी लेना चाहिये ॥१०॥

जन्मन्यांतरेराजन् ! सर्व भूत सुहृत्तमः ॥
भूत्वा द्विज वरस्तं वै मामुपैस्यसि केवलं ॥११॥

हे राजन् ! तुम अब भविष्य जन्म में सर्व प्राणियों के उत्तम मित्र (ब्राह्मण के घर) जन्म लेकर अद्वैत स्वरूपों को प्राप्त करोगे ॥११॥

वस्त्रैश्च भूषणैश्चैव शोभा स्यात् वारयोषिताम् ।
विद्यया तपसा चैव राजन्त द्विजनन्दना ॥१२॥

वस्त्र और आभूषणों से वेश्याओं की शोभा होती है परन्तु ब्राह्मण तो विद्या और तपसे ही शोभित होते हैं ॥१२॥

अत्यन्तमतिमेधावी त्रयाणामेकमश्नुते ॥
अल्पायुषो दरिद्रोवा ह्यनपत्यो न संशयः ॥१३॥

अत्यन्त बुद्धिमान् को तीनों वस्तुओं में से एक वस्तु भी प्राप्ति होती है। जैसे या तो अलपायुषी होगा, दरिद्र होगा य सन्तान हीन होगा। १३॥

गंगाजलेन पक्वान्नं देवानामपि दुर्लभं ॥
तीर्थे माधुकरी भिक्षा पवित्राणि युगे युगे ॥१४॥

गङ्गा जलसे पका हुआ अन्न देवताओं को भी दुर्लभ है, इसलिये तीर्थं स्थानों पर माधुकरी भिक्षा प्रत्येक युग में पवित्र है ॥१४॥

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यपूजाव्यतिक्रम ॥
त्रीणितत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥१५॥

जहां अपूज्यो का मान और पूज्य का अनादर होता है। वहाँ दुरभिक्ष, मरण और भय तीनों बातों से एक बात होती हैं ॥ १५ ॥

उत्तमा सहजा वृत्तिः मध्यमा ध्यानधारणा
निकृष्ट शास्त्र चिंताचतीर्थ यात्रा धमा धमः ॥ १६ ॥

अर्थ — जिसको स्वाभाविक समाधि लग जाती है वह उत्तम, जो ध्यान धारणा, करे वह मध्यम, शास्त्र चिन्तन करने वाले निकृष्ट तथा तीर्थयात्रा सबसे अधम से अधमहै ॥१६॥

भोगे रोग भयं कुले च्युति भयं वित्ते नृपालाद्भयं ।
मानेदन्य भयंम् बलेरिपु भयं रूपे जराथा भयंम् ॥
शास्त्रे वादि भयम् गुणे खल भयम् काये कृतान्ताद् भयंम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणाम् वैराग्यमेवाभयम् १७

भोग में रोग का भय है, कुल में नाश का भय है। द्रव्य में राजा का भय है। मान में दीनता का बल में शत्रु का, रूप में वृद्धावस्था का भय, शास्त्र में वादिका भय, गुण में खल का भय, काया को मृत्यु का भय रहता है। अर्थात् संसार की सब वस्तुएं भय ग्रस्त हैं केवल वैराग्य ही निर्भय है ॥१७॥

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्ति-हीनाः सुरागिणः ॥
तेऽप्यज्ञानं तयानूनं पुनरा यांति यांति च ॥१८॥

ब्रह्म वार्ता में कुशल, तथा वृत्ति हीन रागी औरते अज्ञानी पुरुष बारंबार संसार में जन्मता और मरता है ॥१८॥

पाताले चान्तरिक्षे दशदिशि गगने सर्वशैले समुद्रे ।
भस्मेकाष्ठे च लोष्ठे क्षितिजलपवने स्थापरे जंगमेवा ॥
बीजे सर्वौषधीनामसुरसुरपतौ पुष्पपत्रे तृणाग्रे ।
एकोऽयापिशिवोऽयं इतिवदति हरिर्नास्ति देवो द्वितीयः॥१९॥

पाताल में व्योम, मैं दशो दिशाओं में, पर्वतो में समुद्र में

भस्ममें, काष्टमें, लोष्टमें पृथ्वी जलवायुमें स्थावर जंगमके सर्वोषधियों के मूल में देवदानवो में पुष्प पत्र तृणो में एक शिव ही व्यापक है अन्य कोई भी देव नहीं यह श्री विष्णु भगवान् कहते हैं ॥१९॥

एकोदेवकेशवो वा शिवो वा एकं मित्रं भूपतिर्वायतिर्वा ॥
एकोवासः पत्तनेवा वनेवा एका नारी सुंदरी वादरिवा॥२०॥

एकही देवता में मन लगाना चाहिये, चाहे कृष्ण हों चाहे शिव । एक ही मित्र करना चाहिये चाहे वह राजा हो चाहे संन्यासी । एक ही जगह स्थिर होकर रहना चाहिये चाहे वह नगर हो या बन अपनी एक ही स्त्री से प्रेम करना चाहिये चाहे वह सुन्दरी हो या चाहे पहाड़ की कन्दरा हो ॥ २० ॥

यदा किञ्चिदज्ञोऽहं द्विपइव मदान्धः समभवं ।
तदासर्वज्ञोऽस्मी त्यभवदवलिप्तं मम मनः ॥
यदाकिंचित्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं ।
तदामूर्खोऽस्मीति ज्वरइवमदोमे व्यपगतः ॥२१॥

जब मैं मुर्ख था तो हाथी की तरह मदान्ध था । और मेरे मनमें यह । गर्व था, कि मैं सर्वज्ञ हूं। इसके बाद में जब थोड़ा २ पण्डितों के पास से ज्ञान प्राप्त किया तो "मैं मूर्ख हूँ" यह जान कर मेरा मद ज्वर की तरह उतर गया ॥२१॥

ब्राह्मणस्यतु दे होयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।

इह कष्टाय तपसे प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।।२२।।

ब्राह्मण की यह देह क्षुद्र कामों के लिये नहीं है। अपितु इस संसार में कष्ट साध्य तप करके बाद में अन्त मोक्ष) सुख प्राप्त करने के लिये है ।।२२।।

न चेन्द्रस्य सुखं कश्चित् न सुखं चक्रवर्तिनः ।।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्त जीविनः ।।२३।।

इन्द्र को भी सुख नहीं है, चक्रवर्ती राजा को भी कोई सुख नहीं, परन्तु एकान्त वासी विरक्त मुनि सर्वको सुख सम्पन्न है ।।२३।।

तद् रुद्राक्षे वाक् विषये कृते दश गोदानफलं भवेत। श्रुति

रुद्राक्ष शब्द उच्चारण मात्र से दश गौदान का फल मिलता है। श्रुतिः ।। २४ ।।

सुखमैद्रिकंराजन्स्वर्गे नरक एवच ।।
देहिनां यद्यपादुखं तस्मान्नेच्छयेततद्बुधः ।।२५।।

दत्तात्रय कहते हैं कि हे राजन्! विना उद्यम किये भी दुःख प्रारब्ध के बल से स्वयं प्राप्त होता है। उसमें किसी भी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार स्वर्ग में या नरक में कहीं भी होवे इन्द्रिय सुख भी स्वयं मिलता है। इस लिये ज्ञानी पुरुष को सुख के लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिये ।।२५।।

न धर्मशास्त्रं पठतीतिकारणं न चापिवेदाध्ययनंदुरात्मनः ॥
स्वभावएवात्रतथाऽतिरिच्यते यथाप्रकीत्यांमधुरंगवांपयः ॥२६॥

शास्त्र पठनका कोई विशेष कारण नहीं, क्योंकि दुष्ट पुरुष वेदाध्यन करके भी मनोनुकूल करता है। जैसे की गाय का स्वाद दुग्ध स्वाभाविक मधुर होता है ॥२६॥

विश्वेशो जनको उमाच जननीगंगाच मातृस्वसा ।
ढुंडी भैरव दंडपाणि सदृशा ज्येष्ठाःमम भ्रातर ॥
सा काशी मणिकर्णिका च भगिनी जाया ममेयं मतिः ।
सत्कर्माणि सुता सदैव शुभदा काश्यं कुटुम्ब मम ॥२७॥

काशी विश्वनाथ मेरे पिता, उमा माता, तथा गङ्गा मौसी हैं, दुण्ढिराज भैरव, दंडपाणि जैसे मेरे बड़े भाई हैं। काशो मणिकार्णिका मेरी बहन हैं। मेरी बुद्धि स्त्री है। सत्कर्म मेरा पुत्र इस तरह शुभदायक काशिमें मेरा सम्पूर्ण कुटुम्ब है ॥२७॥

श्री गौर्याः सकलार्थदं निजपदांभोजेन मुक्तिप्रदम् ।
मौढं विघ्नवनं हरन्तमनघं श्री धुन्डी तुण्डा सीना ॥
वंदे चर्मकपाशिकोपकरणैः वैराग्यसौख्यात्परम् ।
नास्तीति प्रदिशन्त मन्त विधुरं श्री काशिकेशंभजेत् ॥ २८ ॥

श्री गौरी सम्पूर्ण सिद्धि देनेवाली हैं, उनके पाद मुक्तिप्रद हैं ढुंढिराज मनके भयंकर पापरूपी जंगलको नष्ट करने वाले हैं।

जो हाथमें कपाल का सुन्दर खप्पर लिये शंकर को वन्दन करते हैं। वैराग्य परम सुख है, न इसका अन्त ही है इस अनन्त सुख को देने वाले भगवान् शंकर को भजो ॥२८॥

प्रातर्वैदिक-कर्मतः तदनु सत् वेदान्तसंचिंतया ।
पश्चाद् भारत-मोक्ष धर्म-कथया वासिष्ठ-रामायणात् ॥
सौर्या भागवतार्थी तत्त्व कथया रात्रौ निदिध्यासनात् ।
कालो गच्छतु न शरीरमरणं प्रारब्ध कंठार्पितम् ॥२९॥

प्रातः काल वैदिक कर्म कर वेदान्तका चिन्तन करो तदनन्तर महाभारत मोक्षधर्म की कथा योग वाशिष्ठ और रामायण पढ़े। सांयं काल में भागवत तत्त्व की कथा और रात्रि में निदि ध्यासन करे । इस प्रकार समय व्यतीत करने वाले का मरण नहीं होता, क्योंकि उसके गलेमें प्रारब्ध रूपी मालार है ॥२६॥

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीकलत्रादिषु भौमइज्यधी
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचित्जनेस्वभिज्ञे तुसएव गोखरः३

जो शरीर को आत्मा मानता है उसी प्रकार अपनी स्त्री है। पृथ्वीके पदार्थं पाषाण मूत्ति का आदि में पूज्य बुद्धि करता है तथा जल में तीर्थ बुद्धि रखता है। लेकिन कभी किसी भी महापुरुष में पूज्य बुद्धि तथा आत्म स्वरूप नहीं रखता उसे समझिये कि गऊओं में गधा मिलगया ॥३०॥

भावाद्द्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्द्वैतं न कर्हिं कचित् ॥
सर्वत्रद्द्वैतं कुर्यात् न द्द्वैतं गुरुणा सह ॥३१॥

सर्वदा भावना से अद्वैत करना, परन्तु क्रियामें अद्वैत भात्र नहीं करना। अन्य सब बातों में अद्वैत भाव ना रखना, मगर गुरु के साथ सर्वदा द्वैत भावना रखना ॥३१॥

ब्रह्मचर्याद्धि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते ॥
एवमाहुः परेलोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः ॥३२॥

ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व ब्रह्मचर्य पालन करने से आता है। परलोक में ब्रह्मचर्य वेत्ताओ ने यह बात कही ॥३२॥

नास्तियोगं विना सिध्धिर्नवा सिध्धिं विना यशः ॥
नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात् परंतपः ॥?॥२२

योग विना सिद्धि नहीं मिलतो। सिद्धि विना जगत में यश नहीं मिलती। इस लोक में निर्मल यशरूप ब्रह्मचर्य से अन्य कोई श्रेष्ठ तप नहीं। अर्थात् ब्रह्मचर्या ही सब व्रतों का मूल है ॥३३॥

मार्कंडेया वटे कृष्णो रौहिणेये महोदधौः ॥
इंद्रद्युम्ने कृतेस्नाने पुनर्जन्म न विद्यते ॥३४॥

मारकंडेय वटके नीचे कृष्ण रोहिणी और सागर, इन्द्रद्युम्न में स्नान करने से पुर्नजन्म नहीं होता ॥३४॥

मल्लानामशनिः नृणाम् नरवरः स्त्रीणांस्मरोमूर्तिमान् ।
गोपानांस्वजनेऽसतांक्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोशिशुः ॥३ ॥
मृत्युर्भोजपतेर्विराड विदुषां तत्वं परं योगिनाम् ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥३५॥

मल्लशाला में बलभद्र के साथ पहुंचने पर भगवान् कृष्ण मनुष्यों को नर श्रेष्ठ, स्त्रियों के मूर्तिमान् कामदेव गौवों को स्वजन दुष्ट राजाओं को, शासन करने वाला, जो वृद्ध पिता के थे उन्हें शिशुरूपमे कंस को मृत्यु रूप में, विद्वानों को विराट रूप में योगियों को परम तत्वरूप में वृष्णा भक्तों को बड़े देव के रूप में बलभद्र के साथ मण्डप में गये। तब दिखायी दिये ॥३५॥

श्री हिमानार्थवासात्साचाऽपि परिणंथिनि ॥
ब्राह्मी श्री सुदुभा श्री हि प्रज्ञाः हिंनिन क्षत्रियः ॥१॥३६

हे क्षत्रिय श्रेष्ठ। लक्ष्मी के सहवास से सुख तथा मान तो मिलता है, परन्तु वह परलोक का नाश करती है। और ब्राह्मी लक्ष्मी अज्ञानी को मिलनी कठिन है ॥३६॥

छित्वा पाशमपास्य कूटर चनां भंक्त्वा बालाद् वा गुरां ।
पर्यन्ताग्निः शिखाकलाप जटिला मुत्प्लुत्य धावमृगः ॥
व्याधानां शरगोचरादति जवे नोत्प्लुत्य गच्छन्नथो ।
कूपान्तः पतितः करोतुविमुखे किंवाविधौपुरुषः ॥३७॥

पास का छेदन करके कूट रचना वागुरा को तोड़कर चारों ओर से जाज्वल्यमान अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं को उल्लघन करके दौड़ता हुआ मृग व्याधों के वाणों के समुख से भी बचकर अति शीघ्रता पूर्वक जाता हुआ किसी भयानक कूप में गिर पड़ा, हाय, भाग्य के विमुख होने पर पुरुष क्या करे?

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ॥
दुःखितैः संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥३८॥

मूर्ख शिष्य को उपदेश देने से, दुष्ट स्त्री का पोषण करने से दुखी मनुष्यों के साथ व्यवहार से पण्डित भी दुःखी होता है ॥३८॥

दुष्टा भार्या शठं मित्रं मृत्युश्चोत्तर दायकः ॥
स सर्पेच गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥३९॥

दुष्टभार्या, शठमित्र और सन्मुख उत्तर देनेवाला नौकर तथा जिसघर में सर्प रहता हो उस घर में रहना मृत्युके तुल्य ही है ॥३९॥

आपदर्थे धनं रक्ष दारान् रक्षेद्धनै रपि ।
आत्मानं सततं रक्षे दारैरपि धनैरपि ॥ ४० ॥

आपत्ति के लिए द्रव्य का रक्षण करना, धन खर्च करके भी स्त्री की रक्षा करे। आत्म रक्षार्थ स्त्री और धन दोनों का उपयोग करे ॥ ४० ॥

यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बांधव ।

न च विद्या गमोऽप्यस्ति वासं तत्र न कारयेत् ॥४१॥

जिस देश में न मान हो, न सुवृत्ति ही हो, न बांधव हों, तथा विद्या वृद्धि का साधन भी न हो वहां वास नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्मस्तु पंचमः ।

पंच यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥ ४२ ॥

जहां धनिक, श्रोत्रिय, राजा, नदी, और वैद्य यह पांचों न हों वहां एक दिन भी वास न करे ॥ ४२ ॥

लोक यात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्य त्याग शीतला ।

पंच यत्र न विद्यंते न कुर्या तत्र संगतिम् ॥ ४३ ।

जिनमें (जहां) निर्वाह साधन, दुर्गुणों का भय, लज्जा, कौशल्य और उदारता यह पांचो न हों वहां संगत न करे ॥४३॥

जानियात् प्रेपणे भृत्यान् बांधवान् व्यसना गमे ।

मित्रं चापत्ति कालेतु भार्यां च विभव क्षये ॥४४॥

आत्मा देने से नौकर की दुःख आने पर बन्धुओं की आपत्ति आने पर मित्र की और धन नाश होने पर स्त्री की परीक्षा होती है ॥७॥

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे ।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठत्ति स बांधवः ॥ ४५ ॥

छिन्न की व्यग्रता, दुःख आने पर दुष्काल में, शत्रु से लड़ने में, राज दरबार और स्टेशन में जो साथ दे वही बान्धव हैं ॥ ४५ ॥

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवम् परि सेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च । ४६॥

जो मनुष्य निश्चित का त्याग कर, अनिश्चित का सेवन करता है । उसका निश्चित पदार्थ तो नष्ट हो जाता है तथा अनिश्चित तो नष्ट है ही । ४६ ॥

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ ४७ ॥

गहरी नदियों का, हथियार वाले मनुष्य का, नख वाले पशु का सींग वाले जानवरों का, स्त्री और राजकुल का कभी विश्वास नहीं करना ॥ ४७ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्य,ममेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥४८॥

विष से अमृत अशुद्ध जगह का सुवर्ण, नीच से भी उत्तम गुण और दुष्कुलसे भी स्त्री रत्न ग्रहण कर लेना चाहिये ॥४८॥

स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जा चापि चतुर्गुणा ।
साहसं षड्गुणं चैव कामश्चाष्ट गुणः स्मृतः ॥४९॥

स्त्री में पुरुष से द्विगुण आहार, चतुर्गुण लज्जा छः गुण साहस और आठ गुणा काम रहता है ॥४९॥

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वंमतिलोभता ।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥५०॥

स्त्री में झूठ बोलना, साहस. माया, मूर्खता, कृपणता अशुद्धपना, निर्दयहीनता ये स्वाभाविक गुण रहते हैं ॥५०॥

भोज्यं भोजन शक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥५१॥

भोग्य, भोग्य शक्ति. सुन्दर स्त्री रतिशक्ति । धन और दान शक्ति यह सब बातें होना थोड़े तप का काम नहीं । अर्थात् बड़ी तपस्या के बाद यह वस्तुएं मिलती हैं ॥५१॥

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छंदानुगामिनी ।
विभवेमश्च संतुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैवहि ॥५२॥

जिसका आज्ञाकारी पुत्र हो, आज्ञानुसार चलने वाली स्त्री, ईश्वरेच्छानुकूल प्राप्त पदार्थों में सन्तोष रखने वाले पुरुष के लिये यही स्वर्ग है ॥५२।

ते पुत्रा ये पितृ भक्ताः सपिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वास सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥५३॥

वह ही पुत्र सुपुत्र हैं जो पिता के भक्त हैं, जो पोषण करे वही पिता है। जिसमें विश्वास हो वही मित्र है जिससे सुख मिले वही स्त्री है ॥ ३।

परोक्षे कार्यहंतारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ॥
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भम्पयोमुखम् ॥ ५४ ॥

पीछे जो कार्य नाश करने को घात लगाता हो, तथा सन्मुख मीठा बोले, उस आदमी को, ऊपर दुग्ध से आच्छन्न हलाहल से भरे हुए घड़े की तरह त्याग देना चाहिये ॥ ५४ ॥

न विश्वसेत् कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत् ॥
कदाचित् कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥ ५५ ॥

कुमित्र का कभी भी विश्वास न करो तथा मित्र का भी पूर्ण विश्वास न करो। क्योंकि कभी मित्र प्रतिकूल तथा क्रोधित होकर अपना सब गुप्त रहस्य प्रकट कर सकता है ॥ ५५ ॥

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत् ॥
मन्त्रवद्रक्षयेद्गूढं कामं चापि नियोजयेत् ॥ ५६ ॥

मनसे विचारे हुए कार्य को वाणी से कभी मत कहो। उसे मंत्र के सदृश छिपाये रहो और गुप्त तौर पर ही कार्य सिद्धि करलो ॥ ५६ ॥

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम् ॥
कष्टात्कष्टतरञ्चैव परगेहनिवासनम् ॥ ५७ ॥

मनुष्य की मूर्खता भी दुःख देने वाली है, यौवन भी कष्ट दायक है। परन्तु दूसरे के घर में वास करना घोर दुःखकर है ॥ ५७ ॥

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ॥
साधवो नहि सर्वत्र चंदनं न वने वने ॥ ५८ ॥

सब पर्वतों में माणिक्य नहीं होते और न प्रत्येक हाथी में गजमुक्ता ही होती है। इसी प्रकार न सर्वत्र साधु ही होते हैं और न सब वन में चन्दन ही होता है ॥ ५८ ॥

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः ॥
नीतिज्ञाः शीलसंपन्ना भवन्ति कुलपूजिताः ॥ ५६ ॥

विद्वज्जनों को सर्वदा अपने पुत्रों को नाना प्रकार के शीलों (गुणों) में लगाना चाहिये, क्योंकि नीतिज्ञ और शील सम्पन्न पुरुष ही कुल पूज्य बनता है ॥ ५६ ॥

माता रिपुः पिताशत्रुर्बालो येन न पाठ्यते ॥
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ ६० ॥

जिन्होंने अपने बालक को नहीं पढ़ाया वे माता पिता शत्रु है। वह बालक विद्वत् समाज में, हंसो में बगुलों की तरह, शोभित नहीं होता ॥ ६० ॥

लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः ॥
तस्मात् पुत्रश्च शिष्यश्च ताडयेन्नतु लालयेत् ॥ ६१ ॥

लाड़ (प्यार) करने में बहुत दोष हैं तथा ताड़न करने में बहुत से गुण हैं। इसलिये पुत्र और शिष्य को हमेशा शिक्षा देवे, कभी प्यार न करे ॥ ६१ ॥

श्लोकार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्धाक्षरेण वा ॥
अवंध्यं दिवसं कुर्याद्ध्यानाध्ययनकर्मभिः ॥ ६२ ॥

एक श्लोक अथवा आधा, उससे भी आधा या एक अक्षर का ही अभ्यास करके दिन को दानाध्ययनादि सत्कर्म से पूर्ति करे अर्थात् निष्फल न खोवे ॥ ६२ ॥

कान्तावियोगः स्वजनापमानो
ऋणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा ।
दरिद्रभावो विषमा सभा च
विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम् ॥ ६३ ॥

शीलवती स्वनारी से वियोग, स्वजन से किया हुआ अपमान, कर्ज का शेष, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता, अविवेकी पुरुषों का समाज ये सब विना अग्नि के शरीर को जला देते हैं ॥ ६३ ॥

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी ॥
मन्त्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यंत्यसंशयम् ॥ ६४ ॥

नदी किनारे का वृक्ष, दूसरे के घर में गई हुई औरत, मन्त्री हीन राजा ये सब शीघ्र ही नष्ट होते हैं । ॥ ६४ ॥

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यबलं तथा ॥
बलं वित्तं च वैश्यानां शूद्राणां च कनिष्ठिका ॥ ६५ ॥

ब्राह्मणों को विद्या, राजाओं का सैन्य, और वैश्यों का धन तथा शूद्रों का सेवा ही वल है ॥ ६५ ॥

दुराचारी च दुर्दृष्टिः दुरावासी च दुर्जनः ॥
यैर्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ ६६ ॥

दुराचारी, पापदृष्टिवाला तथा कुस्थान में रहने वाला दुर्जन ऐसे पुरुष से जो मित्रता करता है वह शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६ ॥

समाने शोभते प्रीती राज्ञि सेवा च शोभते ॥
वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥ ६७ ॥

बराबर वाले से मित्रता, राजा की सेवा, व्यवहार में वाणिज्य और घर में दिव्य स्त्री शोभित होती है ॥ ६७ ॥

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः ॥
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरंतरम् ॥ ६८ ॥

किसका कुल सर्व दोष रहित है ? व्याधि ने किसको पीड़ित नहीं किया ? संकट किसे प्राप्त नहीं हुआ ? तथा हमेशा सुख किसको रहा है ? अर्थात् यह वस्तुएं सभी को यथा भाग्य ही मिलती हैं ॥ ६८ ॥

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् ॥
संभ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥ ६९ ॥

आचार कुलको कहता है, भाषा देश बतलाती है आदर

करना ही प्रेम का द्योतक है। शरीर की आकृति ही खाद्य श्रेष्ठ अश्रेष्ठ भोजन को बतलाती है ॥ ६९ ॥

सत्कुले योजयेत् कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् ॥
व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मेण योजयेत् ॥ ७० ॥

कन्या अच्छे कुल में देनी चाहिये तथा पुत्र को विद्याभ्यास में लगाना चाहिये। शत्रु को संकट में और मित्र को धर्म में प्रवृत्त कराना चहिये ॥ ७० ॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः ॥
सर्पो दंशति कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे ॥ ७१ ॥

दुर्जन और सर्प में सर्प ही श्रेष्ठ है, क्यों कि सर्प तो समय से काटता है परन्तु दुर्जन पद पद पर मर्म छेदन करता है ॥ ७१ ॥

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् ॥
आदिमध्यावसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम् ॥७२॥

राजा कुलीन पुरुषों का संग्रह इस लिये करता है कि वह आदि मध्य अन्त (उत्कर्ष, अपकर्षोत्कर्ष, अपकर्ष) में राज को नहीं छोड़ते। अर्थात् प्रत्येक समय उसकी सहायता करते हैं ॥ ७२ ॥

मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ॥
भिद्यते वाक्यशल्येन अदृशं कंटको यथा ॥ ७३ ॥

मूर्ख पुरुष का सर्वदा त्याग ही करना चाहिये क्योंकि वह प्रत्यक्ष दो पैर का पशु है. तथा सर्वदा अपने वाग्वाण से वेधता रहता है, जैसे अन्धे को कांटा वेधता है ॥ ७३ ॥

रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसंभवाः ॥
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥ ७४ ॥

सुन्दर रूप और यौवन से सम्पन्न तथा उच्च कुल में उत्पन्न भी विद्याविहीन पुरुष अच्छा नहीं लगता जैसे खूबसूरत पलास का फूल भी निर्गन्ध होने से अच्छा नहीं लगता ॥ ७४ ॥

कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम् ॥
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम् ॥ ७५ ॥

कोकिलों का स्वर, स्त्रियों का पतिव्रत, कुरूपों की विद्या और तपस्वियों की क्षमा ही स्वरूप है ॥ ७५ ॥

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् ॥
मौने च कलहो नास्ति नास्ति जागरितो भयम् ॥७६॥

उद्योग से दरिद्र नष्ट होता है जप से पातक, मौन रहने से कलह तथा जागने में भय नहीं होता ॥ ७६ ॥

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः ॥
अति दानाद्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ७७ ॥

अति रूपवती होने से सीता, अति गर्व से रावण, अधिक

दान से वलि बंधा इसलिये किसी भी काम में ज्यादती नहीं करनी चाहिये ॥ ७७ ॥

को हि भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ॥
को विदेशः सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥७८॥

-समर्थ पुरुष को भार भार ही नहीं। उद्योगियों को कुछ दूर नहीं, विद्वानों को कहीं भी विदेश नहीं और मीठा बोलने वालों का कोई भी शत्रु नहीं होता है ॥ ७८ ॥

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगंधिना ॥
वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ७९ ॥

एक ही सुवृक्ष के सुगन्धित पुष्प, फल से वन सुवासित हो जाता है, जैसे सुपुत्र से कुल प्रख्यात हो जाता है ॥ ७९ ॥

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ॥
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ८० ॥

एक सूखे वृक्ष में अग्नि लगने से वह सम्पूर्ण वन जल जाता है, ठीक ऐसे ही एक कुपुत्र से कुल नष्ट हो जाता है ॥८०॥

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ॥
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चंद्रेण शर्वरी ॥८१॥

एक ही विद्वान्, सज्जन सुपुत्र से कुल आनन्दित हो जाता है जैसे एक ही चन्द्रमा से रात्रि शोभित होती है ॥८१॥

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः ॥
वरमेकः कुलालंबी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥ ८२ ॥

शोक सन्ताप देने वाले बहुत से पुत्रों की अपेक्षा कुलालम्बी एक ही पुत्र श्रेष्ठ है जिससे कुल को विश्रान्ति मिलती है ॥ ८२ ॥

लालयेत् पंचवर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ॥
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रत्वमाचरेत् ॥ ८३ ॥

बालक को पांच वर्ष तक प्यार करे, दश वर्ष तक ताड़ना करे। मगर जब पुत्र सोलह वर्ष का हो तो उस से स्वमित्र की तरह आचरण करे ॥ ८३ ॥

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे ॥
असाधुजनसंपर्के यः पलायेत् स जीवति ॥ ८४ ॥

रोगादि के उपद्रव से, शत्रु सैन्य से पराजित तथा भयंकर दुष्काल में और दुष्टों के संग से जो भागे वही जीवित रह सकता है, अन्यथा नहीं ॥ ८४ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोपि न विद्यते ॥
जन्म जन्मानि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम् ॥ ८५ ॥

जिसने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों में से एक भी उपार्जित नहीं किया। उसके कई जन्मों का फल मृत्यु ही है अर्थात् उसका जीवन वृथा है ॥ ८५ ॥

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसंचितम् ॥
दम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥८६॥

जहाँ मूर्खों का मान नहीं होता, और जहां अन्न का संग्रह किया जाता है और जहाँ दाम्पत्य में प्रेम है वहाँ लक्ष्मी स्वयं निवास करती हैं ॥ ८६ ॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेवच ॥
पंचैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥८७॥

आयु, कर्म, धन, विद्या नाश यह पांच वस्तुएं जीव को गर्भ में ही प्राप्त हो जाती हैं, अर्थात् गर्भ में ही लिख दी जाती हैं ॥ ८७ ॥

दर्शनध्यानसंस्पर्शैः मत्सी कूर्मी च पक्षिणी ॥
शिशुं पालयते नित्यं तथा सज्जनसंगतिः ॥ ८८ ॥

जिस तरह मछली देखकर, कच्छपी ध्यान से और चिड़िया स्पर्श से अन्डे सेती हैं। बच्चों का पालन करती हैं) उसी प्रकार दर्शन, स्पर्शन, और ध्यान से सज्जनों की संगति रक्षा करती है ॥ ८८ ॥

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी ॥
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तधनं स्मृतम् ॥ ८९ ॥

विद्या कामधेनु की तरह इच्छित फल देती है। वह अकाल

में भी फल देती है। प्रवास में माता के सदृश रक्षा करती है। इस लिये विद्या को गुप्त धन कहा गया है ॥ ८६ ॥

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः ॥
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारासहस्रशः ॥ ६० ॥

हजारों तारे भी अन्धकार को नष्ट नहीं कर सकते परन्तु एक ही चन्द्र अंधकार को नष्ट कर सकता है। उसी प्रकार हजारों निर्गुणी पुत्रों की अपेक्षा एक गुणी पुत्र श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातो मृतो वरः ॥
मृतः स चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥ ६१ ॥

यदि मूर्ख जन्म कर लम्बी आयु भोगने की अपेक्षा जल्द मर जाय तो अच्छा है। क्योंकि जन्मते ही मर जाने से वह थोड़ा दुःख देता और ज्यादा जीने से अधिक दुःख देता है ॥ ६१ ॥

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या
विनाग्निना षट् प्रदहन्ति कायम् ॥ ६२ ॥

बुरे ग्राम में वास, कुलहीन की सेवा, खराब भोजन, क्रोधी स्त्री, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या यह सब विना अग्नि के काया को जलाते हैं ॥ ६२ ॥

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गुर्विणी ॥
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान् ॥६३॥

उस गऊ से क्या लाभ है जो न तो दूध देती है और न बच्चा देती है। इसी प्रकार उस पुत्र से क्या लाभ जो न तो भक्त ही है और न विद्वान् ही है ॥ ६३ ॥

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रांतिहेतवः ॥
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च ॥ ६४ ॥

संसार रूपी ताप से जले हुए पुरुषों को तीन वस्तुओं से ही शान्ति मिलती है। एक पुत्र दूसरी स्त्री तीसरी सत्पुरुषों की संगति ॥ ६४ ॥

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पंडिताः ॥
सकृत्कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥६५॥

राजा एक वार ही आज्ञा देते हैं, पंडित एक वार ही बोलते हैं और कन्या का दान भी एक ही वार होता है अर्थात् यह तीनों बात बार २ नहीं होती ॥ ६५ ॥

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः ॥
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पंचभिर्बहुभी रणम् ॥ ६६ ॥

अकेले में भजन, दो में पठन, तीन में गायन चार में यात्रा, पांच में खेती और असंख्य पुरुष रण में योग्य समझे जाते हैं ॥ ६६ ॥

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ॥
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी ॥९७॥

वही स्त्री सुस्त्री है जो पवित्र और चतुर है, स्त्री वही है जो पतिव्रता है, वही स्त्री स्त्री है जो पति-प्रिया है। स्त्री उसे ही समझो जो सत्य बोलनेवाली है ॥ ९७ ॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबांधवाः ॥
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता ॥ ९८ ॥

पुत्र विना घर शून्य, वान्धव विना दिशाएं शून्य, मूर्ख का हृदय और दरिद्रता सर्व शून्य है। अर्थात् यह सब शोभित नहीं होते ॥ ९८ ॥

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम् ॥
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥ ९९ ॥

अभ्यास विना शास्त्र, अजीर्ण में भोजन, दरिद्र को सभा और बूढ़े के लिये स्त्री विषरूप हैं ॥ ९९ ॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ॥
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान् बांधवांस्त्यजेत् १००

दया हीन, धर्म विद्या हीन गुरु, क्रोध मुखी भार्या और प्रेमहीन वन्धुओं को त्याग देना चाहिये ॥ १०० ॥

अध्वा जरा मनुष्याणां अनध्वा वाजिनां जरा ॥
अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपो जरा ॥ १०१ ॥

मनुष्यों को मार्ग, घोड़ों को न चलना स्त्रियों को अमैथुन वस्त्रों को आतप (धूप) बूढ़ा करता है ॥ १ १ ॥

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ ॥
कस्याहं का च मे शक्तिरिति चिंत्यं मुहुर्मुहुः ॥१०२॥

क्या समय है ? कौन मित्र हैं ? कौन देश है ? क्या आमद और खर्च है ? मैं किसका हूं और मेरी शक्ति क्या है इसका बार बार विचार करना चाहिये ॥ १०२ ॥

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥ १०३॥

स्त्रियों का पति ही गुरु है. सब प्राणियों का अतिथि गुरु है.। द्विजातियों का गुरु अग्नि और सब वर्णों का गुरु ब्राह्मण है ॥ १०३ ॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ १० ४॥

जिस प्रकार घिसने, काटने तपाने और पीटने से सुवण की परीक्षा होती है । उसी प्रकार त्याग, शील, गुण और कर्म से मनुष्य की परीक्षा होती है ॥ १०४ ॥

निःस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामो मण्डनप्रियः ।
नाविदग्धः प्रियंब्रूयात् स्पष्टवक्ता न वञ्चकः ॥१०५॥

जिसको किसी बात की इच्छा न हो, न अधिकार चाहता हो, जो कामी न हो, चतुरता (वाक् पटुता) से रहित हो स्पष्ट वक्ता हो, तो वह कभी भी ठग नहीं हो सकता। अर्थात् दूसरे को धोखा नहीं दे सकता। ॥ १०५ ॥

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अधनानां महाधनाः।
वराङ्गनाः कुलस्त्रीणां सुभगानां च दुर्भगाः ॥ १०६ ॥

मूर्खों का पण्डितों के साथ, गरीबों का धनिकों के साथ कुल वधू से वेश्या का और विधवा का सधवा से द्वेष होता है। यानी यह सब आपस में द्वेष करते हैं। ॥ १०६ ॥

आलस्योपहता विद्या परहस्तगतंधनम् ।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥ १०७॥

आलस्य से विद्या, दूसरे के हाथ में गया हुआ धन, स्वल्प बीज वाला खेत और विना नायक की सेना नष्टहोती है ॥१०७॥

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते ।
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते ॥ १०८ ॥

अभ्यास से विद्या, शील से कुल, गुण से श्रेष्ठता तथा नेत्र से क्रोध मालूम होता है ॥ १०८ ॥

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुना रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम् ॥१०९॥

धर्म से धन का, योग से ज्ञान का, और कोमलता से राजा का, अच्छी स्त्रियों से कुल की रक्षा होती है ॥ १०९ ॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥११०॥

दान से दरिद्रता का, शील से दुर्गुणों का, प्रज्ञा से अज्ञान का और भक्ति से भय का नाश होता है ॥११० ॥

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति कोपसमो वन्हिर्नास्तिज्ञानात्परंसुखम् ॥१११॥

काम से बड़ी व्याधि नहीं है, मोह के तुल्य शत्रु नहीं, क्रोध से बड़ी अग्नि नहीं है और ज्ञान से अधिक कोई सुख नहीं ॥ १११ ॥

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम् ।
जिताक्षस्य तृणंनारी निःस्पृहस्य तृणं जगत् ॥११२॥

ब्रह्मवेत्ता पुरुष को स्वर्ग, शूर वीरों को अपना जीवन, जितेन्द्रिय को नारी तथा त्यागी पुरुष को सम्पूर्ण जगत् तृण के तुल्य है ॥ ११२ ॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मोमित्रं मृतस्य च ॥११३॥

प्रवास में विद्या, घर में स्त्री, रोगी को औषध और मरणानन्तर धर्म ही मित्र है ॥ ११३ ॥

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम् ।
वृथा दान धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवापिच ॥११४॥

समुद्र में वृष्टि, तृप्त को भोजन, धनी को दान, तथा दिन में दीपक जलाना वृथा है ॥११४॥

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम् ।
नास्ति चक्षुः समं तेजो नास्ति धान्यसमं प्रियम् ॥११५॥

मेघ समान शुद्ध जल. आत्म, बल के तुल्य बल नेत्र ज्योति के तुल्य तेज अन्न के तुल्य कोई प्रिय नहीं ॥ ११५ ॥

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥११६॥

निर्धन धन की, पशु प्रेम भरी वाणी की, मनुष्य स्वर्ग की और देवता मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं ॥ ११६ ॥

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥११७॥

सत्य से ही पृथ्वी स्थिर है, सत्य से ही सूर्य तपता है सत्य के बल पर ही वायु चलती है । अर्थात् सब सत्य पर ही चलते (स्थिर) हैं ॥ ११७ ॥

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे ।
चला चले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥११८॥

लक्ष्मी भी चञ्चल है । शरीर भी नाशवान् हैं, गृह भी नाशवान् है । इस नाशवान् संसार में सिर्फ धर्म ही निश्चल है, अर्थात् स्थिर है ॥ ११८ ॥

नराणां नापितो धूर्त्तः पक्षिणां चैव वायसः ।
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्त्ता च मालिनी ॥११९॥

मनुष्यों में नाई, पक्षियों में कौआ, चौपायों में शृगाल और स्त्रियों में मालिन धूर्त होती है ॥ ११९ ॥

जनिता चोपनेताच यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पंचैते पितरः स्मृताः ॥१२० ॥

पैदा करने वाले, यज्ञोपवीतादि संस्कार करने वाले विद्या पढ़ाने वाले, अन्न देने वाले और भय से रक्षा करने वाले यह पांच पिता कहलाते हैं ॥ १२० ॥

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च ।
पत्नीमाता स्वमाता च पंचैता मातरः स्मृताः ॥१२१॥

राजपत्नी, गुरुपत्नी, मित्र की पत्नी, स्व स्त्री की माता और जननी यह पांचो माता कहलाती हैं ॥१२१ ॥

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥१२२॥

सुनने से ही धर्म का ज्ञान होता है, तथा सुनने से ही कुबुद्धि का त्याग, ज्ञान प्राप्ति और सुनने से ही मोक्ष मिलता है ॥ १२२ ॥

पक्षिणां काकचाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः।
मुनीनां पापचाण्डालः सर्वचाण्डाल निन्दकः ॥१२३॥

पक्षियों में काक, पशुओं में कुत्ता, मुनियों में पापाचरण करने वाला तथा सबसे चण्डाल दूसरे की बुराई करने वाला निन्दक होता है ॥ १२३ ॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यते।
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यते ॥१२४॥

राख से कांसा, खटाई से, तांबा, मासिक धर्म से स्त्री और प्रवाह से नदी शुद्ध होती है ॥ १२४ ॥

भ्रमन् संपूज्यते राजा भ्रमन् संपूज्यते द्विजः।
भ्रमन् संपूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ॥१२५॥

घूमने से राजा, ब्राह्मण और योगी की पूजा होती है परन्तु घूमने वाली स्त्री का नाश होता है ॥ १२५ ॥

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थःसपुमान् लोके यस्यार्थः सच पंडितः ॥ १२६॥

जिसके पास संसार में धन है, उसी पुरुष के मित्र हैं बन्धु हैं, और वही पुरुषार्थी है और वही पण्डित है ॥१२६॥

ताहृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि ताहृशः ।
सहायास्ताहृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥१२७॥

जैसी भावी होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है। व्यवसाय और सहायता भी वैसी ही मिलती है॥ १२७ ॥

न च पश्यति जन्मांधः कामांधो नैव पश्यति ।
मदोन्मत्ता न पश्यंति अर्थी दोषं न पश्यति ॥१२८॥

जन्मान्ध, कामान्ध और मदान्धों को तथा अर्थी (स्वेष्ट साधन शील) को दोष नहीं दीखता ॥ १२८ ॥

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ।
भर्त्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा ॥१२९॥

राष्ट्र के पाप का भागी राजा, राजा के पाप का भागी पुरोहित, स्त्री के पाप का भागी पति तथा शिष्य के पाप का भागी गुरु होता है ॥ १२९ ॥

ऋणकर्त्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपंडितः ॥ १३०॥

करज करने वाला पिता, व्यभिचारिणी माता, रूपवती स्त्री और मूर्ख पुत्र शत्रु के समान होता है ॥१३० ॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमञ्जलिकर्मणा ।
मूर्खं छंदानुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पंडितम् ॥१३१॥

लोभी धन से, मानी सत्कार से, मूर्ख उसकी इच्छानुसा
आचरण से और पंडित सदाचरण से वश में होते हैं ॥१३

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो
वरं न दाराः न कुदारदाराः ॥ १३२ ॥

राज्य न हो तो अच्छा. परन्तु दुष्ट राजा का राज्य अच्छ
नहीं, मित्र न हो तो अच्छा, परन्तु दुष्ट मित्र अच्छा न
शिष्य न हो तो अच्छा, परन्तु कुशिष्य अच्छा नहीं. वि
स्त्री के अच्छा, परन्तु दुष्ट स्त्री अच्छी नहीं होती ॥ १३२ ॥

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं,
कुमित्रमित्रेण कुतोऽस्ति निर्वृतिः ।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ॥१३३॥

दुर्गुणी राजा के राज्य में प्रजा को सुख कहां ? दुष्ट मि
की मित्रता में सुख कहां ? इसी प्रकार दुष्टा स्त्री के रहने
घर में प्रेम कहां, तथा कुशिष्य के पढ़ाने में यश न
मिलता ॥ १३३ ॥

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत् पंडितो नरः
देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकर्माणि साधयेत् ॥१३४

विद्वान् पुरुष को वगुले की तरह सब इन्द्रियों का निग्रह करके देश काल और शक्ति के अनुकूल सर्व कार्य सिद्धि करनी चाहिये ॥ १३४ ॥

अर्थनाशं मनस्तापं गृहिणी चरितानि च।
नीचवाक्यं चापमानं मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१३५॥

बुद्धिमान को धन का क्षय, मन का संताप, स्वस्त्री का चरित्र, दुर्जन के वाक्य, दूसरे से हुआ अपमान प्रकाशित नहीं करना चाहिये ॥१३५ ॥

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शांतिचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥१३६॥

सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त हुए को शान्ति मिलती है। वह शान्ति (सुख) लोभ से इधर उधर दौड़ने वाले को नहीं मिलती ॥ १३६ ॥

संतोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥१३७॥

अपने भाग्यानुसार प्राप्त धन, स्त्री और भोजन में सर्वदा सन्तुष्ट रहें। अध्ययन, जप और, दान इन तीन वस्तुओं में कभी संतोष न करे ॥ १३७ ॥

विप्रयोर्विप्रवन्ह्योश्च दंपत्योः स्वामिभृत्ययोः।
अंतरेण न गंतव्यं हरस्य वृषभस्य च ॥१३८॥

दो ब्राह्मणों के बीच से, अग्नि और ब्राह्मण के बीच से पति पत्नी, मालिक, नौकर नन्दी और शंकर के बीच से कभी न जाय ॥१३८॥

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च।
नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥१३९॥

अग्नि, गुरु ब्राह्मण, गौ, कुमारी, वृद्ध और शिशु इनको पैर से स्पर्श न करे, (इससे पाप होता है ॥ १३९ ॥

शकटात् पंचहस्तेन दशहस्तेन वाजिनः।
गजं हस्तेसहस्रेण देशत्यागेन दुर्जनात् ॥१४०॥

गाड़ी से पांच हाथ, घोड़े से दस हाथ, और हाथी से हजार हाथ दूर रहे, तथा जिस देश में दुर्जन रहता है. वह देश (प्रान्त) त्याग देना चाहिये ॥१४० ॥

गजोह्यंकुशमात्रेण वाजी हस्तेन ताड्यते।
शृंगी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः ॥१४१॥

हाथी अंकुश से, हाथ से घोड़ा, सींग वाले जानवर को लाठी से और दुर्जन को खड्ग से वश में करे ॥ १४१ ॥

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते।
साधवः परसंपत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥१४२॥

ब्राह्मण लोग भोजन से, मोर बादल के गर्जन से, सज्जन लोग दूसरों को धन मिलने से, और दुष्ट लोग दूसरों पर विपत्ति आने से खुश होते हैं ॥१४२ ॥

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम् ।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा ॥१४३॥

अपने से बलवान शत्रु को उसी के आचरण से, दुष्ट शत्रु को विपरीत आचरण से और अपने समान बल वाले शत्रु को ताकत या नम्रता से वश में करे ॥१४३॥

बाह्वोवीर्यं बलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्बली ।
रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥१४४॥

राजा का बल पराक्रम है. ब्रह्म याने वेद का ज्ञान ही ब्राह्मण का बल है, और स्त्रियों का रूप एवं जवानी की मधुरता ही बल है ॥ १४४ ॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यंते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठंति पादपाः ॥१४५॥

अत्यन्त सरलता से रहना भी दुःख का कारण होता है, जंगल में जाकर देखो, सरल अर्थात् सीधे पेड़ जल्दी काटे जाते हैं, कुबड़े पेड़ों को कोई देखता भी नहीं ॥ १४५ ॥

यत्रोदकं तत्र वसंति हंसास्तथैव शुष्कं परिवर्जयंति ।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं पुनस्त्यजंते पुनराश्रयंते ॥१४६

जहां पर पानी रहता है, वहीं हंस रहते हैं । और सूख जाने पर उस जगह को छोड़ देते है । मनुष्य को हंस की तरह

रहना नहीं चाहिये कि, एक जगह को छोड़ कर पुनः उसका आश्रय करें ॥ १४६ ॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके,
चत्वारि चिह्नानि वसंति देहे ।
दानप्रसंगो मधुरा च वाणी,
देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥१४७॥

स्वर्ग में रहने वाले मनुष्यों के चार चिह्न होते हैं, जैसे—(१) दान देना, (२) मीठी बोली, (३) देवताओं की पूजा, (४) और ब्राह्मणों को तृप्त करना ॥ १४७ ॥

अत्यंतकोपः कटुका च वाणी,
दरिद्रता बंधुजनेषु वैरम् ।
नीचप्रसङ्गः कुलहीनसेवा,
चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१४८॥

नरक में रहने वालों जीवों के ये चिह्न होते है। जैसे—(१) बहुत क्रोध, (२) कड़ी बोली (३) दरिद्रता, (४) अपने रिश्तेदारों से दुश्मनी, (५) नीचों का सहवास और (६) कुल हीनों की सेवा ॥ १४८ ॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमंदिरं
लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम् ।

जम्बुकालयगते च लभ्यते,
वत्सपुच्छखरचर्मखंडनम् ॥१४६॥

यदि सिंह के मांद में जाय तो उसे हाथी के कपोल की मोती मिलती है, और सियार के स्थान में जाने से बछवे की पूंछ एवं गदहे के चमड़े का टुकड़ा पाया जाता है ॥ १४६ ॥

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना ।
न गुह्यगोपने सक्तं न च दंशनिवारणे ॥१५०॥

विद्या के विना जीना कुत्ते के पोंछ के जैसे बेकार है। क्योंकि कुत्ते की पोंछ न गुप्त बात छिपा सकती है और न मच्छरादि को उड़ाही सकती है ॥ १५० ॥

पुष्पे गंधं तिले तैलं काष्ठे वह्निः पयो घृतम् ।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः ॥१५१॥

जैसे पुष्प में सुगन्ध, तिल में तेल, लकड़ी में आग, दूध में घी और ईख में गुड़ छिपा रहता है । वैसे ही शरीर में आत्मा रहता है, इसे विवेक पूर्वक देखो ॥ १५१ ॥

अधमा धनमिच्छंति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छंति मानो हि महतां धनम् ॥१५२॥

अधम पुरुष धन की इच्छा करते हैं, मध्यम वर्ग के लोग धन एवं मान चाहते हैं और उच्चकोटि के मनुष्य केवल

मान अर्थात् सम्मान ही की कामना करते हैं, क्यों कि मान ही महात्माओं का धन है ॥ १५२ ॥

इक्षुरापः पयो मूलं तांबूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वापि कर्त्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥५३॥

ईख, पानी, दूध, मूल, पान, फल और खाने पर स्नान-दानादि कर्म कर सकते हैं ॥ १५३ ॥

दीपो भक्ष्यते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजाः ॥१५४॥

जैसे दीपक अन्धकार को खाकर काजल पैदा करता है; सत्य है, जैसा अन्न रोज खाया जाता है वैसी ही सन्तान होती है ॥ १५४ ॥

तैलाभ्यंगे चिताधूम्रे मैथुने क्षौरकर्मणि ।
तावद् भवति चांडालो यावत्स्नानं समाचरेत् ॥१५५॥

तेल लगाने के बाद, चिता का धूंआ शरीर पर लगने के बाद, मैथुन याने स्त्रीसंग के बाद और बाल बनवाने के बाद तब तक मनुष्य चाण्डाल रहता है जब तक फिर स्नान न कर लेता है ॥ १५५ ॥

अजीर्णे भैषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् ।
भोजने चामृतं वारि भोजनांते विषप्रदम् ॥१५६॥

अपच में पानी पीना ही हितकर होता है, पचने पर

जल ताक़त देता है और भोजन के बीच में जल पान अमृत के बराबर होता है। एवं भोजन के वाद जल पीना विषतुल्य होता है ॥ १५६ ॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥१५७॥

सदाचार विना ज्ञान व्यर्थ होता है, अज्ञान से मनुष्य मारा जाता है सेनापति के विना सेना नष्ट होती है और पति के विना स्त्री नष्ट हो जाती है ॥ १५७ ॥

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं धनम्।
भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥१५८॥

बुढ़ापे में स्त्री का मर जाना, भाईयों के हाथ गया हुआ धन एवं पराधीन भोजन ये तीन पुरुषों की विडम्बना है अर्थात् दुःखदायक होते हैं ॥ १५८ ॥

अग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रियाः।
न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥१५६

अग्निहोत्र के विना वेद और दान के विना कर्म वृथा है। एवं भाव के अर्थात् श्रद्धाके विना सिद्धि नहीं होती है। इस लिये प्रेम ही सब का मूल कारण है ॥ १५६ ॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥१६०॥

देवता न लकड़ी में, न पत्थर में और न मट्टी में रहते हैं, केवल जहां श्रद्धा होती है वहीं सब कुछ है। इसलिये श्रद्धा नहीं मूल कारण है ॥ १६० ॥

शांतितुल्यं तपो नास्ति न संतोषात्परं सुखम्।
न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दयापरः ॥१६१॥

शान्ति के समान दूसरा तप नहीं है, सन्तोष से परे न सुख नहीं है, न तृष्णा से दूसरी व्याधि और दया से न अधिक धर्म है ॥१६१॥

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुघा धेनुः संतोषो नंदनं वनम् ॥१६२॥

गुस्सा यमराज के सदृश होता है, तृष्णा याने चाह वैतरणी नदी के समान है, विद्या काम धेनु गाय के तुल्य है और सन्तोष मानों इन्द्र की वाटिका ही है ॥ १६२ ॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम्।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ॥१६३॥

गुण रूप को भूषण है, कुल का भूषण शील है. सिद्धि विद्या को भूषित करती है और भोग धन को भूषित करता है ॥ १६३ ॥

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम्।
असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन हतं धनम् ॥१६४॥

गुण के विना रूप व्यर्थ है, दुश्चरित्र का कुल नष्ट हो जाता है, सिद्धि विना विद्या ही व्यर्थ है, और जिसधन से सुख नहीं मिलता वह धन ही वृथा है ॥ १६४ ॥

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता ।
शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तोषी ब्राह्मणः शुचिः॥१६५॥

भूमिगत जल पवित्र होता है, पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, कल्याण करने वाला राजा पवित्र गिना जाता है, और संतोषी ब्राह्मण शुद्ध होता है ॥१६५॥

असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टश्च महीपतिः ।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जा च कुलांगना ॥१६६

असंतोषी ब्राह्मण तथा संतोषी राजा, निन्दित गिने जाते हैं सलज्जा वेश्या और लज्जाहीन कुलस्त्री निन्दित गिनी जाती हैं ॥ १६६ ॥

किं कुलेन विशालेन विद्याहीने च देहिनाम् ।
दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि हि पूज्यते ॥१६७॥

विद्याहीन बड़े कुलसे मनुष्यों को क्या लाभ है ? विद्वान् का नीचा कुल देवता से भी पूजा जाता है ॥ १६७ ॥

रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥१६८॥

सुन्दर तरुणयुक्त और बड़े कुल में उत्पन्न विद्याहीन न
शोभते जैसे विना गन्ध के पलास फूल ॥१६८॥

मांसभक्ष्यैः सुरापानैः मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रांतास्ति मेदिनी ॥ १६९॥

सर्वदा मांस खानेवाले, शराब पीने वाले अक्षर शून्
पुरुषा कार पशुतुल्य मूर्खों से यह भूमण्डल भाराक्रान्
है ॥ १६९ ॥

अन्नहीनो दहेद्राष्टं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः।
यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥१७०॥

अन्नदान विना किया हुआ यज्ञ समूचे देश को जल
देता है, मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्विजों को भस्म करता है औ
दानहीन यज्ञ यजमान को को नष्ट कर देता है इसलिये य
के समान कोई दुश्मन नहीं है ॥ १७० ॥

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।
क्षमार्जवदयातोष सत्यंपीयूषवत्पिव ॥ १७१॥

हे भाई, यदि तुम मुक्ति याने मोक्ष चाहते हो तो विषयों
को जहर के समान समझकर त्याग दो, क्षमा, आर्जव, दया
संतोष और सत्य को अमृत के समान सेवन करो ॥१७१॥

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।

विद्वान् धनाढ्यो नृपदीर्घजीवी,
धातुः पुराकोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥ १७२ ॥

सोने में महक, ईख, चन्दन में फूल, धनवान् विद्वान एवं खूब आयुष्य वाला राजा होना चाहिये, मालूम होता है कि, सृष्टि के समय ब्रह्माजी को बुद्धि देनेवाला कोई न था ॥ १७२ ॥

सर्वौषधीनाममृता प्रधाना,
सर्वेषुसौख्येष्वशनं प्रधानम् ।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्,
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥ १७३ ॥

सब औषधियों में हर्र प्रधान होता है, सब सुखों में अशन याने खाना प्रधान, सब इन्द्रियों में आंख प्रधान एवं सब अङ्गों में सिर प्रधान होता है ॥ १७३ ॥

दूतो न संचरति खे न चलेच्च वार्त्ता,
पूर्वं न जल्पितमिदं न च संगमोऽस्ति ।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं,
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥१७४ ॥

आकाश में दूत नहीं चल सकता है और न कोई बात वहां पहुंच सकती है, एवं पहिले ही बात करदी गई है ऐसा

कहना भी ठीक नहीं है, आकाश में होने वाला सूर्यग्रहण ठीक है. यह जो ब्राह्मण जानता है वह विद्वान क्यों नहीं है ॥ १७४ ॥

विद्यार्थी सेवकः पांथ क्षुधार्तो भयकातरः ।
भांडारी प्रतिहारी च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत् ॥१७५॥

विद्यार्थी, सेवक, पथिक, अधिक भूख से पीड़ित, भय से कातर, भंडारी, द्वारपाल ये सात यदि सोते हों तो जगा देना चाहिये ॥ १७५ ॥

अहिं नृपं च शार्दूलं वृटिं च बालकं तथा ।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥१७६॥

सांप, राजा, व्याघ्र, वरैं, बालक दूसरे का कुत्ता और मूर्ख ये सात सोते हों तो नहीं जगाना चाहिये ॥ १७६ ॥

अर्थाधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनः ।
तेद्विजाः किं करिष्यंति निर्विषाइव पन्नगाः ॥ १७७ ॥

जिन्होंने धन के लिये अर्थ के साथ वेद को पढ़ा, तैसे ही शूद्र का अन्न भोजन किया, वे ब्राह्मण विषहीन सर्प के समान क्या कर सकते हैं ॥ १७७ ॥

यस्मिन् रुष्टेभयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहोऽनुग्रहेनास्ति स रुष्टः किंकरिष्यति ॥ १७८ ॥

जिसके रुष्ट होने पर न भय है, न प्रसन्न होने पर धन

का लाभ है, न दण्ड वा अनुग्रह होसक्ता है; वह रुष्ट होकर क्या करेगा ॥१७८॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्यामहतीफणा।
विषमस्तु न चाप्यस्तु फटाटोपो भयंकरः ॥१७६॥

विषहीन सांप कोभी अपना फण बढ़ाना चाहिये, क्योंकि विष हो वा न हो आडम्बर भयानक होता है ॥ १७६ ॥

प्रातर्द्यूत प्रसंगेन मध्याह्ने स्त्री प्रसंगतः।
रात्रौचौर प्रसंगेन कालोगच्छतिधीमताम् ॥१८०॥

प्रातः काल जुआड़ियों की कथा से अर्थात् महाभारत से, मध्यह्नमें स्त्री प्रसंगसे. अर्थात् रामायण से, रात्रि में चोरों की वातोंसे, अर्थात् बुद्धिमान् का समय बीतता है ॥१८०॥

स्वहस्त ग्रथितामाला स्वहस्त घृष्ट चन्दनम्।
स्वहस्त लिखितं स्तोत्रं शक्र स्यापि श्रियं हरेत् ॥१८१॥

अपने हाथ से गुंथी माला, अपने हाथ से घिसा चन्दन अपने हाथ से लिखा स्तोत्र ये इन्द्र की भी लक्ष्मी को हर लेते हैं ॥ १८१ ॥

इक्षुदण्डास्तिलाः शूद्राः कान्ता हेम मेदिनी।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुण बर्द्धनम् ॥१८२॥

ऊख, तिल, शूद्र, कान्ता, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही पान ये ऐसे पदार्थ हैं कि इनका मर्दन गुणवर्धक है ॥१८२॥

दरिद्रता धीरतया विराजते
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ।
कदन्नता चोष्णतया विराजते
कुरूपता शीलतया विराजते ॥१८३॥

दरिद्रता भी धीरता से शोभती है, स्वच्छता से कुवस्त्र भी सुन्दर जान पड़ता है. कुअन्न भी उष्णता से मीठा लगता है, कुरूपता भी सुशीलता हो तो शोभती है ॥१८३॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम् ।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥१८४॥

दृष्टि से शोधकर पाँव रखना उचित है, वस्त्र से छानकर जल पीना, शास्त्र से शुद्ध कर वाक्य बोले, मन से सोच कर कार्य करना चाहिये ॥१८४॥

सुखार्थीचेत्यजेद्विद्यां विद्यार्थींचेत्सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतोविद्या सुखंविद्र्यार्थिनः कुतः ॥१८५॥

यदि सुख चाहे तो विद्या को छोड़ दे, यदि विद्या चाहे सुख को त्याग करे, सुखार्थी को विद्या कैसे होगी और विद्यार्थी को सुख कैसे होगा ॥१८५॥

रंकं करोति राजानं रंक मेवच ।
धनिनं निर्द्धनं चैव निर्द्धनं धनिनं विधिः ॥१८६॥

निश्चय है कि विधाता रंक को राजा, राजा को रंक, धनी को निर्धनी और निर्धनी को धनी कर देता है ॥१८६॥

लुब्धानां याचकः शत्रु मूर्खाणां बोधको रिपुः ।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रु श्चौराणां चन्द्रमा रिपुः ॥१८७॥

लोभियों को याचक, मूर्खों को समझाने वाला, व्यभिचारिणी स्त्री को पति और चोरों का चन्द्रमा शत्रु है ॥१८७॥

येषा न विद्या न तपो न दानं ।
न चापि शीलं न गुणों न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुविभार भूता–
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १८८ ॥

जिन लोगों को न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है न गुण है और न धर्म है वे संसार में पृथ्वी पर भार रूप होकर मनुष्य रूप से मृग के समान फिर रहे हैं ॥ १८८ ॥

अन्तःसार विहीनानामुपदेशो न जायते ।
मलयाचलसंसर्गात् न वेणुश्चन्दनायते ॥१८९॥

गम्भीरता विहीन पुरुषों को शिक्षा देना सार्थक नहीं होता, मलयाचल के संग से बांस चन्दन नहीं होता ॥१८९॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पण किं करिष्यति ॥१९०॥

जिसको स्वभाविक बुद्धि नहीं है, उसको शास्त्र क्या कर सकता है, आंखों से हीन पुरुषों को दर्पण क्या करेगा ॥१६०॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो न हि भूतले।
अपानं शतधाधौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत् ॥१६१॥

दुष्ट को सज्जन बनाने के लिये पृथ्वीतल में कोई उपाय नहीं है। जैसे मल के त्याग करने वाली इन्द्रिय सौ सौ बार भी धोई जाय तो भी शुद्ध न होगी ॥ १६१ ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः।
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥१६२॥

बड़ों के द्वेष से मृत्यु होती है, शत्रु के विरोध करनें से धनका क्षय होता है, राजा के द्वेष से नाश होता है और ब्राह्मण के द्वेष से कुल का क्षय होता है ॥ १६२ ॥

वरं वनं व्याघ्र गजेन्द्र सेवितं-
द्रुमालये पत्र फलाम्बु सेवनम्।
तृणेषु शय्या शतजीर्ण वल्कलं-
न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥ १६३ ॥

बनमें बाघ और बड़े २ हाथियों से सेवित वृक्ष के नीचे पत्ता फल खाना, जलका पीना, घास पर सोना, सौ टुकड़े के वल्कलों का पहिरना श्रेष्ठ है, किन्तु बन्धुओं के मध्य में धन हीन जाना श्रेष्ठ नहीं ॥१६३॥

विप्रोवृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या—
वेदाः शाखा धर्म्म कर्म्माणि पत्रम्।
तस्मात्मूलं यत्नतो रक्षणीयम्—
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥ १६४ ॥

ब्राह्मण वृक्ष है, उसकी जड़ सन्ध्या है, वेद शाखा है, और धर्म कर्म ये पत्ते हैं इस कारण प्रयत्न करके जड़ की रक्षा करनी चाहिये जड़ कट जानेपर न शाखा रहेगी न पत्ते ॥१६४॥

एकवृक्षे समारूढा नाना वर्णा विहंगमाः।
प्रभाते दिक्षुदशसु का तत्र परिवेदना ॥ १६५ ॥

नाना प्रकार के पखेरू एक वृक्षपर बैठते हैं, और प्रभाता समय दिशाओं में उड़जाते हैं उसमें क्या सोच है ॥१६५॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम्।
बनेसिंहोमदोन्मत्तः शशकेननिपातितः ॥१६६॥

जिसको बुद्धि है उसी को बल है. निर्बुद्धि को बल कहाँ से होगा, देखो बन में मद से उन्मत्त सिंह शशक से मारा गया ॥ १६६ ॥

का चिंताममजीवने यदिहरिर्विश्वम्भरो गीयते।
नो चेदर्भकजीवनाय जननी स्तन्यं कथं निःसरेत् ॥
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलम्।
स्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालोमया नीयते ॥१६७॥

मेरे जीवन में क्या चिंता है यदि हरि विश्व को पालने वाला कहलाता है, ऐसा न होता, बच्चे के जीने हेतु माता के अस्तन में दूध कैसे बनाते, इसका बार२ विचार करके यदुपति हे लक्ष्मी पति ! सदा केवल आपके चरण कमल की सेवा से मैं समय को बिताता हूं ॥ १९७ ॥

अन्नाद्दशगुणः पिषः पिष्टाद्दशगुणं पयः ।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥१९८॥

चावल से दश गुणा आटा में गुण है, आटा से दश गुणा दूध में, दूध से अठ गुणा मांस में, और मांस से दश गुणा घी में गुण है ॥ १९८ ॥

शाकेन रोगावर्द्धन्ते पयसो वर्द्धते तनुः ।
घृतेन वर्द्धते वीर्यं मासान्मांसं प्रवर्द्धते ॥१९९॥

शाक से रोग बढ़ता है, दूध से शरीर बढ़ता है, घी से वीर्य बढ़ता है और मांस से मांस बढ़ता है ॥ १९९ ॥

दातृत्वं प्रिय वक्तृत्वं धीरत्वं मुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणः ॥२००॥

उदारता, प्रिय बोलना, धीरता, उचित का ज्ञान, ये अभ्यास से नहीं मिलते, ये चारों स्वाभाविक गुण हैं ॥ २०० ॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत् ।
स्वयमेव लयंयाति यथा राजन्यमधर्मतः ॥ २०१ ॥

जो अपनी मंडली छोड़ करके दूसरे का आश्रय लेता है, वह आप ही लय हो जाता है, जैसे राजा अधर्म से ॥ २०१ ॥

हस्ती स्थूलतनुः सचांकुशवशः कि हस्तिमात्रों कुशो-
दीपे प्रज्वलितं प्रणस्यति तमः किं दीपमात्रन्तमः ।
वज्राणापिहताः पतन्तिगिरियः किं वज्रमात्रन्नगाः-
तेजोयस्य विराजते सबलवान्स्थूलेषुकः प्रत्ययः ।२०२।

हाथी का स्थूल शरीर है, वह भी अंकुश के वश रहता है, तो क्या हस्ती के समान अंकुश है ? दीपक के जलने पर अन्धकार आपही नष्ट हो जाता है, तो क्या दीपक के तुल्य तम है ? विजली मारने से पर्वत गिर जाते हैं तो क्या विजली पर्वत के समान है ? जिसमें तेज विराजमान रहता है वह बलवान् गिना जाता है, मोटे का कौन विश्वास है ॥ २०२ ॥

कलौ दश सहस्राणि हरिस्त्यजति मेदिनीम् । स्कन्दपुराणे
तदर्द्धं जान्हवी तोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः ॥२०३॥

कलयुग में दश हजार वर्ष के बीतने पर विष्णु पृथ्वी को छोड़ देते हैं, उसके आधे पर गंगाजी जलकी, तिसके आधे बीतने पर ग्राम देवता ग्रामको ॥ २०३ ॥

गृहा सक्तस्य नो विद्या नो दया मांस भोजिनः ।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता ॥२०४॥

गृहमें आसक्त पुरुषों को विद्या नहीं होती, मांस के

अहारी को दया नहीं होती, द्रव्यलोभी को सत्यता नहीं होती और व्यभिचारी को पवित्रता नहीं होती ॥ २०४ ॥

अन्तर्गत मलोदुष्टे, तीर्थं स्नानं शतैरपि ।
न शुध्यति यथा भांडं सुरायादाहितंचयत् ॥२०५॥

जिसके हृदय में पाप है, वही दुष्ट है वह तीर्थ में सौ बार स्नान से भी शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिरा का पात्र जलाय जाय तो भी शुद्ध नहीं होता ॥ २०५ ॥

न वेत्ति यस्य गुण प्रकर्षं—
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम् ।
यथा किराती करि कुम्भ लब्धां—
मुक्तां परित्यज्य विभर्ति गुंजाम् ॥२०६॥

जो जिनके गुण की परीक्षा नहीं जानता वह निरन्तर उसकी निंदा करता है, जैसे भिल्लनी हाथी के मस्तक के मोती को छोड़कर घूमची को पहचानती है ॥ २०६ ॥

येतु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जते ।
युगकोटि सहस्त्रं ते स्वर्गलोके महीयते ॥ २०७ ॥

जो वर्ष भर नित्य चुपचाप भोजन करता है, वह दस हजार कोटि वर्ष तक स्वर्ग लोकमें पूजा जाता है ॥२०७॥

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादु शृंगार कौतुके ।
अतिनिद्राऽति सेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत् ॥२०८॥

काम, क्रोध, लोभ, मीठी वस्तु, शृङ्गार, खेल, अतिनिद्रा और अतिसेवा इन आठों को विद्यार्थी छोड़ देवे ॥ २०८ ॥

अकृष्ट फल मूलानि च वनवासरतिः सदा ।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते ॥२०६॥

बिना खेती भूमि से उत्पन्न फल वा मूलको खाकर सदा वनवास और प्रतिदिन श्राद्ध करने वाला ब्राह्मण ऋषि कहलाता है ॥२०६॥

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्म निरतः सदा ।
ऋतुकालाऽभिगामी च सविप्रो द्विज उच्यते ॥२१०॥

एक समय के भोजन से सन्तुष्ट रह कर पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना कराना, दान देना और लेना इन छः कर्मों में सदा-रत हो और ऋतुकाल में स्त्री का संग करे ऐसे ब्राह्मण को द्विज कहते हैं ॥२१०॥

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः ।
वाणिज्यं कृषि कर्मा यः स विप्रो वैश्य उच्यते ॥२११॥

सांसारिक कर्म में प्रीति पशुओं का पालन बनिआई और खेती करने वाला ब्राह्मण वैश्य कहलाता है ॥२११॥

लाक्षादि तैल नीलीनां कौसुम्भमधु सर्पिषाम् ।
विक्रिता मद्य मांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥२१२॥

लाक्ष आदि पदार्थ, तेल, नील, कुसुम, मधु, घी, मद्य और मांस बेचने वाला ब्राह्मण शूद्र कहा जाता है ॥२१२॥

परकार्य विहंता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः ।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥२१३॥

दूसरे के काम को बिगाड़ने वाला, दम्भी, अपना ही कार्य कराने वाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अन्तःकरण में क्रूर हो वह ब्राह्मण बिलार कहा जाता है ॥२१३॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शणम् ।
निर्वाहः सर्व भूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥२१४॥

देवता का द्रव्य और गुरु का द्रव्य जो हरता है, और पर स्त्री से संग करता है, और सब प्राणियों में निर्वाह कर लेता है वह विप्र चाण्डाल कहाता है अर्थात् (चड़ी कोपे) इस धातु से चाण्डाल पद साधु होता है ॥२१४॥

देयं भोज धनंधनं सुकृतिभिर्नोसंचितस्तस्य वै ।
श्रीकर्णस्य बलेश्चविक्रमपतेरद्यापिकीर्तिः स्थिता ॥
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात् संचितम् ।
निर्वाणादितिनैजपादयुगलंघर्षंत्यहोमक्षिकाः ॥२१५॥

सुकृतियों को चाहिये कि भोग योग्य धन और द्रव्य को देवे उसका संचय कभी न करे श्रीकर्ण, बलि, विक्रमादित्य इन

राजाओं की कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्त्तमान है। दान भोग से रहित दिनसे संचित हमारे लोगों का मधु नष्ट हो गया निश्चय है कि मधु मक्खियां मधु के नाश होने के कारण दोनों पांवों को घिसा करती हैं ॥२१५॥

सानंदंसदनं सुतास्तु सुधियः कांताप्रियालापिनी ।
इच्छापूर्तिधनंस्वयोषितिरतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः ॥
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानंगृहे ।
साधोः संगमुपासते च सततं धन्योगृहस्थाश्रमः २१६

यदि आनन्द युक्त घर मिले और लड़के पंडित हों स्त्री, मधुर भाषिणी हो, इच्छा के अनुसार धन हो, अपनी स्त्री में रति हो, आज्ञा पालक सेवक मिले अतिथि की सेवा हो, और शिव की पूजा होती जाय, प्रति दिन गृह में मीठा अन्न और जल मिले, सर्वदा साधु के संग की उपासना हो तो गृहस्थाश्रम ही धन्य है ॥२१६॥

दाक्षिण्यं स्वजनेदयापरजने शाठ्यंसदादुर्जने ।
प्रीतिःसाधुजनेस्मयः खलजने विद्वज्जनेचार्जवम् ॥
शौर्यंशत्रुजनेक्षमागुरुजने नारीजनेधूर्त्तता ।
इत्थंयेपुरुषाःकलासुकुशलास्तेष्वेवलोकस्थितिः॥२१७॥

अपने जन में दक्षता, पर जन में दया, दुष्ट जन में शठता सदा

दुर्जन में दुष्टता साधु जनमें प्रीति, खल में अभिमान विद्वा सरलता शत्रु जन में शूरता, गुरु माता पिता आचार्य के में क्षमा, स्त्री से काम पड़ने पर धूर्तता इस प्रकार से जो कला में कुशल होते हैं उन्हीं में लोक की मर्यादा रहती है॥

हस्तौदानविवर्जितौश्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ।
नेत्रेसाधु विलोकनेनरहितं पादौनतीर्थंगतौ॥
अन्यायार्जित वित्तपूर्णमुदरं गर्वेणतुंगंशिरो।
रेरेजंवुकमुञ्चमुञ्चसहसा नीचस्यनिंद्यंवपुः॥२१८॥

हाथ दान रहित है, कान वेद शास्त्र के विरोधी हैं, नें साधु का दर्शन नहीं किया, पावों से तीर्थ गमन नहीं अन्याय से अर्जित धन से उदर भरा है और गर्व से ऊँचा हो रहा है सियार ऐसे नीच निन्द्य शरीर को छोड़ दे॥२१८॥

येषांश्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्तिभक्तिर्नरा
येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्तारसज्ञा
येषांश्रीकृष्णलीलाललितरसकथा सादरौ नैवक
धिक्तान्धिकतान्धिगेतान्कथयतिसततंकीर्तनस्थो

श्री यशोदा सुतके पद कमल में जिन लोगों की भक्ति रहती जिन लोगों की जीभ अहीरों की कन्याओं के प्रि

अर्थात् श्रीकृष्ण के गुणगान में प्रीति नहीं रखती और श्रीकृष्ण जी की लीलाओं की ललित कथा का आदर जिनके कान नहीं करते उन लोगों को धिक्कार है, उन्हीं लोगों का धिक् है ऐसा कीर्तन का मृदंग सदा कहता रहता है ॥२१६॥

न दुर्जनः साधु दशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः ।
आमूलसिक्तःपयसाघृतेन ननिम्बवृक्षोमधुरत्वमेति ॥

निश्चय है कि दुर्जन अनेक प्रकार से सिखलाया जाय, पर उसमें साधुता नहीं आती दूध घी से नीम की जड़ (वृक्ष) सींची जाय पर उसमें मधुरता नहीं आती ॥ २२० ॥

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो वसन्तस्य किम्,
नोलुकोप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ।
वर्षा नैवपतन्तिचातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्,
यत्पूर्वंविधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुंकःक्षमः॥

यदि करील के वृक्ष में पत्र नहीं होते तो बसन्त का क्या अपराध है ? यदि उलूक को दिन में नहीं दीखता तो सूर्य्य का क्या दोष है । वर्षा चातक के मुख में नहीं पड़तो इसमें मेघ का क्या अपराध है ? पहिले ही ब्रह्माने जो कुछ ललाट में लिख रक्खा है उसे मिटाने को कौन समर्थ है ॥२२१॥

सतसंगाद्भवति हि साधुना खलानां,
साधूनां न हि खलसंगतः खलत्वम् ।
आमोद कुसुम भवमं मृदेव धत्ते ।
मृद्गन्धनहि कुसुमानि धारयन्ती ॥ २२२ ॥

निश्चय है कि अच्छे के संग से दुर्जनों में साधुता आ जाती है परन्तु साधुओं में दुष्टों की संगति से असाधुता नहीं आती फूल के गन्ध को मिट्टी ले लेती है परन्तु मिट्टी के गन्ध को फूल कभी धारण नहीं करते ॥२२२॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थ भूताहि साधवः ।
कालेन फलन्ति तीर्थं सद्य साधुसमागमः ॥ २२३ ॥

साधुओं का दर्शन ही पुण्य है. इस कारण कि साधु तीर्थ रूप हैं समय से तीर्थ फल देता है साधुओं का संग शीघ्र काम देता है ॥२२३॥

विप्रस्मिन्नगरेमहान् वसती कस्तालद्रूमाणांगणः ।
को दातारजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीचानिशि ।
को दक्षः परदार वित्तहरणे सर्वोऽपिदक्षोजनः ।
कस्माज्जीवसी हे सखेविषकृमिन्यायेनजीवाम्यहम्

हे मित्र ! कहो इस नगर में बड़ा कौन है, ताड़ के पे के समूह कौन दान शील है; धोबी प्रातः काल में वस्त्र ले

रात्रि में देता है चतुर कौन है, दूसरे के धन और स्त्री के हरने में सब ही कुशल है हे मित्र! कैसे तुम जीते हो? विष का कीड़ा जैसे विष ही में जीता है वैसे ही मैं भी जीता हूं ॥२२४॥

न विप्र पादोदक कर्दमानि—
न वेदशास्त्रध्वनि गर्जितानि।
स्वाहा स्वधाकार विवर्जितानि—
स्मशान तुल्यानि गृहाणि तानि ॥ २२५॥

जिन घरों में ब्राह्मण के पावों के जलसे कीचड़ न भया हो और न वेद शास्त्र के शब्द का गर्जना और जो गृह स्वाहा स्वधा से रहित हो उसको स्मशान के समान समझना चाहिये ॥२२५॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म संग्रहः ॥२२६॥

शरीर अनित्य है विभव भी सदा नही रहता, मृत्यु सदा निकट ही रहती है इस कारण सब मनुष्य को धर्म सदा संग्रह करना चाहिये ॥२२६॥

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावोनव तृणोत्सवाः।
पत्युत्साहवती नारी अहं कृष्ण रणोत्सवः ॥२२७॥

निमन्त्रण ब्राह्मणों का उत्सव है, नवीन घास गाइयों का

उत्सव है पति के उत्साह से स्त्रियों को उत्साह होता है। कृष्ण ! मुझको रण ही उत्सव है ॥२२७॥

धर्मेतत्परता मुखेमधुरता दानेसमुत्साहता—
मित्रेऽवंचकताशुरौ विनयता चित्तेतिगंभीरता ।
आचारे शुचितागुणेरसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता—
रूपेसुन्दरता शिवेभजनता त्वय्यस्तिभो राघव ।२२८

धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्सुकता, मित्र के विषय में निरछलता गुरु में नम्रता अन्तःकरण में गभीरता आचार में पवित्रता, गुण में रसिकता शास्त्रों में विशेषता रूप में सुन्दरता और शिव की भक्ति हे राघव ! ये सब आप ही में है ॥२२८॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिंतामणि प्रस्तरः—
सूर्यस्तीव्रकरः शशीक्षयकरः क्षारोहिवारां निधिः।
कामोनष्टतनुर्बलीर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौः—
नैतांस्तेतुलयामि भो रघुपते कस्योपमादीयते ॥२२९॥

कल्पवृक्ष काठ है, सुमेरु अचल है चिंतामणि पत्थर है सूर्य की किरणें अत्यन्त ऊष्ण हैं चन्द्रमा की किरण क्षीण हो जाती हैं समुद्र खारा है काम को शरीर नहीं हैं बलि दैत्य है कामधेनु गाय पशु ही है इस कारण आपके साथ इनकी

तुलना नहीं दे सकते। हे रघुपति! फिर आपको किसकी उपमा दी जाय ॥२२९॥

अनालोक्य व्ययंकर्ता अनाथः कलहप्रियः।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥२३०॥

बिना विचारे खर्च करने वाला, सहायक के न रहने पर कलह में प्रीति रखने वाला और सब जाति की स्त्रियों में भोग के लिये व्याकुल होने वाला पुरुष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥२३०॥

धनधान्य प्रयोगेषु विद्या संग्रहणे तथा।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥२३१॥

धन धान्य के व्यवहार में, वैसे ही विद्या के पढ़ने पढ़ाने में, आहार और व्यवहार में लज्जा को छोड़ेगा वही सुखी होगा ॥२३१॥

जलबिंदु निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
सहेतुः सर्व विद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥२३२॥

क्रम २ से जलके एक २ बुन्द के गिरने से घड़ा भर जाता है, यही सब विद्या, धर्म और धन के भी संग्रह के कारण है ॥२३२॥

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः।
संपक्वमपिमाधूर्यं नोपयातिंद्रवारुणम् ॥२३३॥

वय के परिणाम पर भी जो खल रहता है, सो खलही

बना रहता है। अत्यन्त पकी इमली भी कभी मीठी होती है ? ॥२३३॥

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यंनैव चिंतयेत् ।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तंते विचक्षणाः ॥२३४॥

गत वस्तुका शोक नहीं करना चाहिये और भावी की चिंता कुशल लोग नहीं करते, किन्तु वर्तमान कालके अनुरोध से प्रवृत्त होते हैं। ॥२३४॥

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता ।
ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पंडिताः ॥२३५॥

निश्चय है कि देवता, सत्पुरुष और पिता ये प्रकृति से सन्तुष्ट होते हैं; पर बन्धु स्नान और पान से और पण्डित जन प्रियवचन से। ॥२३५॥

अहोवतविचित्राणि चरितानिमहात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणायमन्यन्ते तद्भारेणनमन्ति च ॥२३६॥

आश्चर्य है कि महात्माओं के विचित्र चरित्र हैं, लक्ष्मी को तृण सम मानते हैं और यदि मिल जाती है तो उसके भार से नम्र हो जाते हैं ॥२३६॥

यस्यस्नेहो भयंतस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दुःखानि तानित्यक्त्वा वसेत्सुखम् २३७

जिसको किसी में प्रीति रहती है उसी का भय होता है,

स्नेह ही दुःख का मूल और स्नेह ही दुःख का कारण है इसलिये उसे छोड़ कर सुखी होना उचित है ॥२३७॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्था।
द्वावेते सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥२३८॥

आनेवाले दुःखों का पहिले से उपाय करने वाला और जिसकी बुद्धि में विपत्ति आ जाने पर शीघ्र ही उपाय भी आ जाता हो, वे सदा सुख से बढ़ते हैं और जो सोचता है कि, भाग्यवश जो होने वाला है अवश्य होगा, वह विनष्ट हो जाता है ॥२३८॥

राज्ञिधर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥२३९॥

यदि धर्मात्मा राजा हो तो प्रजा भी धर्मिष्ट, पापी हो तो पापी, और सम हो तो सम होती है अर्थात् सब प्रकार राजा के अनुसार चलती है; जैसा राजा होता है वैसा ही प्रजा होती है ॥२३९॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्यैव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥२४०॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनमें से जिसको एक भी नहीं रहता बकरी के गले के स्तन के समान उसका जन्म निरर्थक है ॥२४०॥

दह्यमानाः सुतिव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना।

अशक्तास्तत्पदंगंतु ततोनिंदां प्रकुर्वते ॥२४१॥

दुर्जन दूसरे की कीर्ति रूप दुस्सह अग्नि से जलकर उसके पद को नहीं पाते इसलिये उसकी निन्दा करने लगते हैं ॥२४१॥

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥२४२॥

विषयों में आसक्त मन बन्धन का हेतु है, विषय से रहित मुक्ति का, मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है ॥२४२॥

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनोयाति तत्र तत्र समाधयः ॥२४३॥

परमात्मा के ज्ञान से देह के अभिमान के नाश हो जानेपर जहाँ जहाँ मन जाता है वहाँ समाधिही है ॥२४३॥

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम् ।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात्सन्तोषवान् भवेत् ॥२४४॥

मन का अभीप्सित सब सुख किसको मिलता है ? जिस कारण सब दैव के वश है। इससे संतोष पर भरोसा करना चाहिये ॥२४४॥

अनवस्थित कार्यस्य न जने न वने सुखम् ।
जनोदहतिसंसर्गाद्वनं संगविवर्जिनात् ॥२४५॥

जिसके कार्य की स्थिरता नहीं रहती वह न जन में सुख

पाता है न वन में, जन उसको संसर्ग से जलाता है और वन में संग के त्याग से ॥२४५॥

यथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विंदति ।
तथागुरुगतांविद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥२४६॥

जैसे खनने के साधन से खन के पाताल के जल को प्राणी पाता है वैसेही गुरुगत विद्या को सेवा से शिष्य पाता है ॥२४६॥

कर्मायत्तं फलंपुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणि ।
तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वंति ॥२४७॥

यद्यपि फल पुरुष के कर्मके आधीन रहता है और बुद्धि भी कर्म के अनुसार ही चलती है तथापि विवेकी महात्मा लोग विचारही के काम करते हैं ॥२४७॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते ।
श्वानयोनिशतंभुक्त्वाचांडालेष्वभिजायते ॥२४८॥

जो एक अक्षर भी देने वाले गुरुकी वन्दना नहीं करता वह कुत्ते की सौ योनि को भोगकर चाण्डालों में जन्म लेता है ॥२४८॥

युगान्तेप्रचलेन्मेरुः कल्पांते सप्तसागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थान्नचलन्तिकदाचन ॥२४६॥

युग के अन्त में सुमेरु भी चलायमान होता है और कल्प के अन्त में सातों सागर, परन्तु साधू लोग स्वीकृत अर्थ से कभी नहीं विचलते ॥२४६॥

पृथिव्यांत्रीणिरत्नानि अन्नमापः सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंख्याविधीयते ॥२५०॥

पृथ्वी में जल अन्न और प्रिय वचन ये तीन ही रत्न हैं, मूर्खों ने पाषाण के टुकड़ों को रत्न में गिना है ॥२५०॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानिदेहिनाम् ।
दारिद्र्यदुःखरोगाश्च बन्धनव्यसनानि च ॥२५१॥

जीवों को अपने अपराध रूप वृक्ष से दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति ये फल होते हैं ॥२५१॥

पुनर्वित्तंपुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥२५२॥

धन, मित्र, पृथ्वी ये सब बारम्बार मिलते हैं, परन्तु शरीर बारम्बार नहीं मिलता ॥२५२॥

बहुनां चैवसत्वानाम् समवायोरिपुंजयः ।
वर्षाधाराधरोमेघ स्तृणैरपि निवार्यते ॥२५३॥

निश्चय है कि बहुत जनों का समुदाय शत्रु को जीत लेता है तृण समूह भी वर्षा की धारा के धरने वाले मेघको निवारण करता है ॥२५३॥

जले तैलं खलेगुह्यं पात्रं दानं मनागपि ।
प्राज्ञेशास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥२५४॥

जल में तेल, दुर्जन में गुप्त वार्ता, सुपात्र में दान बुद्धिमान

से शास्त्र ये थोड़े भी हों तो वस्तु की शक्ति से आपसे आप विस्तार को प्राप्त हो जाते हैं ॥२५४॥

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत् ।
सा सर्वदैवतिष्ठेच्चेत्को न मुच्येत बन्धनात् ॥२५५॥

धर्म विषयक कथा के समय, श्मशान पर और रोगियों को जो बुद्धि उत्पन्न होती है, वह यदि सदा रहती तो कौन संसार बंधन से मुक्त न होता ॥२५५॥

उत्पन्नपश्चातापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वंस्यात् कस्यनस्यान्महोदयः ॥२५६॥

निन्दित कर्म के करने के पश्चात् पछताने वाले पुरुष को जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होती तो किसको बड़ी समृद्धि न होती ॥२५६॥

यस्माच्चप्रियमिच्छेतु तस्य ब्रूयात्सदाप्रियम् ।
व्याधोमृगवधंकर्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥२५७॥

जिसको जिसके प्रिय की वांछा हो सदा उससे प्रिय बोलना उचित है, व्याध मृगा के वध के निमित्त मधुर स्वर से गीत गाता है ॥२५७॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्थानफलप्रदाः ।
सेव्यतांमध्यभागेन राजवह्नि गुरु स्त्रियः ॥२५८॥

अत्यन्त निकट रहने पर विनाश के हेतु होते हैं, दूर रहने से फल नहीं देते । इस हेतु राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री इनको मध्य अवस्था से सेवना चाहिये ॥२५८॥

अग्निरापः स्त्रियोमूर्खः सर्पोराजकुलानि च ।
नित्यं यत्नेनसेव्यानि सद्यः प्राणहराणिषट् ॥२५९॥

अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख, सर्प और राजा के कुल ये साव-धानता से सेवने के योग्य हैं, ये छः शीघ्र प्राण के हरने वाले होते हैं ॥२५९॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः सजीवती ।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥२६०॥

वही जीता है जिसको गुण है, वही जीता है जिसको धर्म है, गुण और धर्म से हीन पुरुष का जीना व्यर्थ है ॥२६०॥

यदीच्छसिवशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
पुरापंचदशास्येभ्यो गांचरंन्ति निवारय ॥२६१॥

जो एकही कर्म से जगत को वश किया चाहतेहो तो पहिले पन्द्रहों के मुख से मन गौ को निवारण करो; तात्पर्य यह है कि आंख, नाक, कान, जीभ त्वचायें, पाचों ज्ञानेन्द्रियां हैं। मुख, हाथ, पांव, लिंग, गुदा ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं। रूप शब्द, रस, गंध, स्पर्श ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं; इन पन्द्रहोंसे मनरूपी गौ को निवारण करना उचित है ॥२६१॥

प्रस्ताव सदृशं वाक्यं स्वभाव सदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिसमंकोपं योजानातिसपंडितः ॥२६२॥

प्रसंग के योग्य वाक्य, प्रकृति के सदृश प्रिय और अपनी शक्ति के अनुसार कोपको जो जानता है वह बुद्धिमान है ॥२६२॥

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः ।
कुणपंकामिनिमांस योगिभिः कामिभिःश्वभिः ॥२६३॥

एक ही देह, रूप, वस्तु तीन प्रकार की देख पड़ती है; योगी लोग उसे अति निन्दित मृतक रूप से, कामी पुरुष कांता रूप से और कुत्ते मांस रूपसे देखते हैं ॥२६३॥

सुसिद्धमौषधंधर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम् ।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्नप्रकाशयेत् ॥२६४॥

सिद्ध औषधि, धर्म, अपने घर का दोष, मैथुन, कुअन्नका भोजन, निंदितवचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमानों को उचित नहीं है ॥२६४॥

तावन्मौनेननीयन्ते कोकिलैश्चैववासराः ।
यावत्सर्वंजनानन्ददायिनीवाक्प्रवर्तते ॥२६५॥

जबलौं कोकिल मौन साधन में दिन बिताती है तबलौं सबजनों को आनन्द देने वाली वाणी प्रारम्भ नहीं होती ॥२६५॥

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥२६६॥

धर्म, धन धान्य, गुरु का वचन और औषध यदि ये सुगृहीत हों तो इनको भली भांति से करना चाहिये; जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥ २६६ ॥

त्यजदुर्जनसंसर्गं भजसाधुसमागमम् ।
कुरुपुण्यमहोरात्रं स्मरनित्यमनित्यतः ॥२६७॥

खल का संग छोड़ साधु की संगति को स्वीकार कर दिन रात पुण्य किया करे और ईश्वर का नित्य स्मरण करे इस कारण कि संसार अनित्य है ॥२६७॥

यस्य चित्तंद्रवीभूतम् कृपया सर्व जंतुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्मलेपने ॥२६८॥

जिसका चित्त सब प्राणियों पर दया से पिघल जाता है उसको ज्ञान, मोक्ष, जटा और विभूति के लेपन से क्या ? ॥२६८॥

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यं यद्दत्वाचानृणोभवेत् ॥२६९॥

गुरु जो शिष्य को एक अक्षर भी उपदेश करते हैं उस निमित्त पृथ्वी में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उऋण हो ॥२६९॥

खलानां कंटकानां च द्विविधैव प्रतिक्रियः ।
उपानन्मुख भंगो वा दूरतोवा विसर्जनम् ॥२७०॥

खल और काँटे इनको दबाने को दोही प्रकार का उपाय है। जूता से मुख को तोड़ना वा दूर से त्याग करना ॥२७०॥

कुचैलिनंदन्तमलोपधारिणंबह्वाशिनन्निष्ठुरभाषिणंच।
सूर्योदयेचास्तमितेशयानंविमुञ्चतिश्रीर्यदिचक्रपाणिः॥

वस्त्र के मैला रखने वाले को, दांतों के मल को दूर न करने वाले को, बहुत भोजन करने वाले को, कटुवादी को, सूर्य के उदय और अस्त के समय में सोने वालों को लक्ष्मी छोड़ देती है चाहें वह विष्णु भी हो तो क्या ॥२७१॥

त्यजंति मित्राणि धनैर्विहीनं दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च।
तेचार्थवन्तं पुनराश्रयंते ह्यर्थोहिलोके पुरुषस्य बंधुः २७२

मित्र, स्त्री, सेवक और बन्धु ये धनहीन पुरुषों को छोड़ देते हैं, वही पुरुष यदि धनी हो जाता है तो फिर उसी का आश्रय करते हैं अर्थात् धन ही लोक में बन्धु है ।।२७२।।

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥२७३॥

अनीत से अर्जित धन दश वर्ष पर्यन्त ठहरता है ग्यारहवें वर्ष मूल सहित नष्ट हो जाता है ।।२७३॥

अयुक्तंस्वामिनोयुक्तं युक्तंनीचस्य दूषणम् ।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शंकर भूषणम् ।।२७४।।

अयोग्य वस्तु भी समर्थ को योग्य हो जाती है और योग्य भी दुर्जन को दूषण कारक होती है । अमृत ने राहु को मृत्यु दिया और विष शंकर का भूषण हुआ ॥२७४।।

तद्भोजनं यद द्विज भुक्तशेषं–
तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन्।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं–
दंभंविना यत् क्रियते स धर्मः।।२७५।।

वही भोजन है जो ब्राह्मण के भोजन से बचा है, वही मित्रता है जो दूसरे में की जाती है वही बुद्धिमान है जो पाप नहीं करता और जो विना दम्भ के किया जाता है वही धर्म है ।।२७५।।

मणिर्लुठति पदाग्रे काचः शिरसि धार्यते ।

क्रयविक्रयवेलायां काचःकाचा मणिर्मणिः ॥२७६॥

मणि पाँव के आगे लोटती हो और कांच शिर पर भी रक्खा हो परन्तु क्रय विक्रय के समय कांच कांच ही और मणि मणि ही है ॥२७६॥

अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्या–
अल्पश्च कालो बहु विघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं–
हंसो यथा क्षीरमिवांबुमिश्रम ॥२७७॥

शास्त्र अनन्त है और विद्या बहुत है, काल थोड़ा है और विघ्न बहुत हैं, इस कारण जो सार है उसको लेना उचित है, जैसे हंस जल के मध्य से दूध को ले लेता है ॥२७७॥

बंधननानिखलुसंतिबहुनिप्रेमरज्जुकृत बंधनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपिषडंघ्रिःनिष्क्रियोभवतिपंकजकोषे ॥

वन्धन तो बहुत हैं परन्तु प्रीति की रस्सी का बन्धन और ही हैं, काठ के छेदने में निपुण भँवरा भी कमल के कोश में निर्व्यापार हो जाता है ॥२७८॥

छिन्नोऽपि चंदनतरुर्न जहाति गन्धं।
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् ॥
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः।
क्षीणोऽपिनत्यजति शीलगुणान्कुलीनः ॥२७९॥

चन्दन का कटा वृक्ष गन्ध को त्याग नहीं देता, बूढ़ा गज भी रति विलास को नहीं छोड़ता, कोल्हू में पेरी ऊँख भी

मधुरता नहीं छोड़ती दरिद्री भी कुलीन और सुशीलता आदि गुणों का त्याग नहीं करता ॥२७९॥

नध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये ।
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुः धर्मोऽपिनोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरु युगलं स्वप्नेऽपिनालिंगितं ।
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदेकुठारावयम् ॥२८०॥

संसार में मुक्त होने के लिये विधिवत् ईश्वर के पद का ध्यान मुझसे न हुआ, स्वर्ग द्वार के फाटक तोड़ने में समर्थ धर्म का भी अर्चन न किया और स्त्री के दोनों पीनस्तन और जघों का आलिंगन स्वप्न में भी न किया अर्थात् मैं माता के युवापन रूप वृक्ष के काटने में केवल कुल्हाड़ी ही हुआ ॥२८०॥

कोऽर्थान्प्राप्यनगर्वितो विषयिणःकस्यापदोऽस्तंगताः ।
स्त्रीभिःकस्यनखंडितं भुविमनः कोनामराज्ञःप्रियः ।
कः कालस्य न गोचरत्वमगमत् कोर्थिगतो गौरवम् ।
कोवादुर्जनदुर्गुणेषु पतितः क्षेमेणयातः पथि ॥२८१॥

धन पाकर गर्वी कौन न हुआ, किस विषयी की विपत्ति नष्ट हुई पृथ्वी में किसके मन को स्त्रियों ने खण्डित न किया, राजा को प्रिय कौन हुआ, काल के बश कौन नहीं हुआ, किस याचक ने गुरुता पाई, दुष्टता में पड़कर संसार के पथ में कुशलता से कौन पार गया ? ॥२८१॥

ननिर्मिताकेन नदृष्टपूर्वा नश्रूयतेहेममयी कुरंगी ।
तथाऽपितृष्णारघुनंदनस्यविनाशकालेविपरीतबुद्धिः ॥

सोने की मृगी न पहिले किसी ने रची, न देखी और न किसी को सुन पड़ती है. तौ भी रघुनन्दन की तृष्णा उसपर हुई अर्थात् विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है ॥२८२॥

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योपि सम्पदः ।
पूर्णेन्दुः किं तथावंद्यो निष्कलंको यथाकुशः ॥२८३॥

सर्व स्थान में गुण पूछे जाते हैं बड़ी सम्पत्ति नहीं पूजी जाती, पूर्णिमा का चन्द्रमा भी क्या वैसा वन्दित होता है जैसा कि विना कलंक के द्वितीया का दुर्बल चन्द्र ॥२८३॥

परमोक्तगुणोयस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्याऽपितैर्गुणैः ॥२८४॥

जिसके गुणों को दूसरे लोग वर्णन करते हैं वह निर्गुण भी हो तो गुणवान कहा जाता है. इन्द्र भी अपने गुणों की आप प्रशंसा करे तो उससे लघुता पाता है ॥२८४॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणायांति मनोज्ञताम् ।
सुतरांरत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥२८५॥

विवेकी को पाकर गुण भी सुन्दरता पाता है जब रत्न सोने में जढ़ा जाता है तब अत्यन्त सुन्दर देखपड़ता है ॥२८५॥

गुणैः सर्वज्ञ तुल्योपि सीदत्येको निराश्रयः ।
अनर्घ्यमपिमाणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥२८६॥

गुणों से ईश्वर के सदृश भी निरालम्ब अकेला पुरुष दुःख पाता है । अमोल माणिक्य ने भी सोना का अवलम्बन किया अर्थात् उसमें जड़ जाने की अपेक्षा करता है ॥२८६॥

साहित्य प्रकरण

दूसरा भाग

अति क्लेशेन ये ह्यर्था धर्मस्यातिक्रमेणतु ।
शत्रुणां प्रणिपातेन तेऽर्थामाभवन्तुमे ॥२८७॥

अत्यन्त पीड़ा से, धर्म त्याग से और वैरियों के नमन से जो धन होता है, सो ईश्वर मुझको न प्राप्त हो ॥२८७॥

किंतयाक्रियते लक्ष्म्या यावधूरीवकेवला ।
यातुवेश्येवसामान्या पथिकैरपिभुज्यते ॥२८८॥

उस सम्पत्ति को लोग क्या कर सकते हैं जो धूल के समान असाधारण है, जो वेश्या के समान सर्व साधारण हो पथिकों के भी भोग में आ सकती हो, वह स्त्री की सदृश किस कामकी ? ॥२८८॥

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषुचाहारकर्मसु ।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वेयातायास्यंतीयान्ति च ॥२८९॥

धन में, जीवन में, स्त्रियों में, और भोजन में, अतृप्त होकर सब प्राणी गये, जायेंगे और जाते हैं इसलिये ईश्वर का भजन करना श्रेष्ठ है ॥ २८९ ॥

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलि क्रिया ।
न क्षीयते पात्रदानम्, भयं सर्वदेहिनाम् ॥२९०॥

दान, यज्ञ, होम, बलि ये सब नष्ट हो जाते हैं, परन्तु सत्पात्र के दिये हुए दान और सब जीवों का अभयदान, ये क्षीण नहीं होते हैं ॥२६०॥

तृणं लघुतृणात्तूलं तूलादपि च याचकः ।
वायुनाकिन्ननीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति ॥२६१॥

तृण सबसे लघु होता है, तृण से रुई हलकी होती है, रुई से भी लघु याचक है, तब इसे वायु क्यों नहीं उड़ा ले जाती ? यही कारण है कि वह समझती है, कि यह मुझसे भी मांगेगा ॥२६१॥

वरं प्राणपरित्यागोमानभंगेन जीवनात् ।
प्राणत्यागे क्षणंदुखं मान भंगेदिनेदिने ॥२६२॥

मान गंवाकर जीने से प्राण का त्याग अच्छा है, कारण कि प्राण त्याग से केवल क्षण भर का दुःख होता है और मान के नष्ट होने पर दिन दिन दुःख होता है ॥२६२॥

संसारकटुवृक्षस्य द्वेफले अमृतोपमे ।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिः सुजनेजने ॥२६३॥

संसार रूप कड़वे वृक्ष के दो फल अमृत समान हैं, मधुर प्रिय वचन और सत्पुरुषों की संगति ॥२६३॥

जन्मजन्मयदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन देहीचाभ्यस्यतेपुनः ॥२६४॥

जो जन्म २ दान अध्ययन तप का अभ्यास किया करता है उस अभ्यास के योग से देही उसी अभ्यास को फिर २ करता रहता है ॥२६४॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम् ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥२६५॥

जो विद्या पुस्तक ही में रहती है और जो धन दूसरे के हाथों में रहता है, काम पड़ जाने पर न वह विद्या है और न वह धन है ॥२६५॥

पुस्तकं प्रत्ययाधीनं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
सभामध्येनशोभन्ते जारगर्भा इवस्त्रियः ॥२६६॥

जिन्होंने केवल पुस्तक से पढ़ा और गुरु के निकट न पढ़ा वे सभा के बीच वैसे ही नहीं शोभते जैसे व्यभिचार द्वारा, गर्भवती स्त्रियां ॥ ६६॥

कृतेप्रतिकृतिंकुर्यात् हिंसने प्रतिहिंसनम् ।
तत्रदोषो न पतति दुष्टेदुष्टं समाचरेत् ॥२६७॥

अपने प्रति उपकार करने पर प्रत्युपकार करना और मारने परमारना इसमें अपराध नही होता, इस कारण कि दुष्ट के साथ दुष्टता का ही आचरण करना उचित होता है ॥२६७॥

यद्दूरं यद्दुराध्यं यच्चदूरे व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसासाध्यं तपोहिदुरतिक्रमम् ॥२९८॥

जो दूर है और जो कठिनता से प्राप्त हो सकता है वे सब तप परिश्रम (उद्योग) से सिद्ध हो सकते हैं, इस कारण (उद्योग) तप ही प्रबल है ॥२९८॥

लोभश्चेद्गुणेन किंपिशुनता यद्यस्तिकिंपातकैः ।
सत्यं चेत्तपसाचकिंशुचिमनो यद्यस्तितीर्थेनकिं ॥
सौजन्यंयदि किंगुणैःसुमहिमायद्यस्तिकिंमंडनैः ।
सद्विद्यायदि किंधनैरपयशोयद्यस्तिकिंमृत्युना ॥२९९॥

यदि लोभ है तो दूसरे दोष से क्या ? यदि चुगली है तो और पापों से क्या ? यदि सत्यता है तो तप से क्या ? मन स्वच्छ है तो तीर्थ से क्या ? यदि सज्जनता है तो दूसरे गुणों से क्या ? जो महिमा है तो भूषण से क्या ? यदि अच्छी विद्या है तो धन से क्या और यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या अर्थात् अपकीर्ति मृत्यु से अधिक कष्टदायक है ॥२९९॥

पितारत्नाकरोयस्य लक्ष्मी र्यस्यसहोदरी ।
शंखोभिक्षाटनं कुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठति ॥३००॥

जिसका पिता रत्नों की खान समुद्र है लक्ष्मी जिसकी बहिन है ऐसा शंख भीख मांगता है, सच है पहिले विना दिये नहीं मिलता ॥३००॥

अशक्तस्तुभवेत्साधु ब्रह्मचारीचनिर्धनः ।
व्याधिष्टोदेवभक्तश्च वृद्धानारीपतिव्रता ॥३०१॥

शक्तिहीन होने पर साधु होता है, निर्धन ब्रह्मचारी होता है, रोगग्रस्त देवता का भक्त होता है, और वृद्धा स्त्री पतिव्रता होती है ॥३०१॥

नान्नोदकं समंदानं न तिथिर्द्वादशी समा ।
न गायत्र्याः परोमंत्रो न मातुर्दैवतंपरम् ॥३०२॥

अन्न, जल के समान कोई दान नहीं है, न द्वादशी के समान कोई तिथि है और न गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र है, न माता से बढ़कर कोई देवता है ॥३०२॥

तक्षकस्य विषंदंते मक्षिकायाः विषंशिरे ।
वृश्चिकस्यविषंपृच्छे सर्वांगेदुर्जनो विषम् ॥३०३॥

सांप के दांत में, मक्खी के शिर में और बिच्छू की पूंछ में विष रहता है पर दुर्जन के सब अङ्गों में विषही भरा रहता है ॥३०३॥

पत्युराज्ञां विनानारीउपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुष्यं हरतेभर्तुः सानारीनरकं व्रजेत् ॥३०४॥

पति की आज्ञा विना उपवास व्रत करने वाली स्त्री स्वामी की आयु को हरती है और वह स्त्री घोर नरक में जाती है ॥३०४॥

न दानैः शुद्धते नारी नोपवास शतैरपि ।
न तीर्थसेवयातद्वद्भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥३०५॥

स्त्री न तो दानों से शुद्ध होती है न सैकड़ों उपवास और तीर्थों के सेवन से जैसी कि स्वामी के चरणोदक से शुद्ध होती है ॥३०५॥

पादशेषं पीनशेषं संध्याशेषं तथैव च ।
श्वानमूत्रंसमंतोयं पीत्वाचांद्रायणं चरेत् ॥३०६॥

पांव धाने से जो जल शेष रहता है, जल पीने से जो वच जाता है और सन्ध्या करने पर जो अवशिष्ट जल रहता है सो कुत्ते के मूत्र के समान है इसको पीने से चान्द्रायण व्रत करना चाहिये इसके विना शुद्धता नहीं होती ॥३०६॥

दानेनपाणिर्नतुकंकणेन स्नानेनशुद्धिर्नतुचंदनेन ।
मानेनतृप्तिर्नतुभोजनेन ज्ञानेनमुक्तिर्नतुमंडनेन ॥३०७॥

दान से हाथ शोभता है, कंकण से नहीं, स्नान से शरीर शुद्ध होती है चन्दन से नहीं, आदर से तृप्ति होती है भोजन से नहीं ज्ञान से मुक्ति होती है छापा तिलकादि भूषणों से नहीं ॥३०७॥

नापितस्यगृहेक्षौरं पाषाणेगंधलेपनम् ।
आत्मरूपं जलेपश्यन् शक्रस्यापिश्रियं हरेत् ॥३०८॥

नाई के घर पर बाल बनाने वाला, पत्थर पर से लेकर चन्दन लगाने वाला, अपने मुख को पानी में देखने वाला इन्द्र भी हो तो उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है ॥३०८॥

सद्य शक्तिहरातुंडी सद्य प्रज्ञाकरीवचः ।
सद्य शक्तिहरानारी सद्य शक्तिकरं पयः ॥३०९॥

कुन्दरु शीघ्र ही बुद्धि हर लेता है और वच झटपट बुद्धि देता है, स्त्री तुरन्तही शक्ति हर लेती है, दूध शीघ्र ही बल को दता है ॥ ३०९ ॥

परोपकारएं येषां जागर्तिहृदयेसताम् ।
नश्यंतिविपदस्तेषां संपदःस्युः पदेपदे ॥३१०॥

जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार जागता है उनकी विपत्ति नष्टहो जाती है और पद २ पर सम्पत्तिहोती है। ३१०

यदिरामा यदिचरमायदितनयोविनयगुणो पेतः ।
तनये तनयोत्पतिः सुखरनगरेकिमाधिक्यम् ॥३११॥

यदि सद्गुणी स्त्री है, यदि लक्ष्मी भी बर्तमान है, यदि पुत्र सुशील गुणों से युक्त है, और पुत्र के पुत्र की भी उत्पत्ति हुई तो फिर देव लोक में इससे अधिक क्या है ॥ ३११ ॥

आहार निद्रा भय मैथुनानि—

समानि चैतानि नृणां पशूनाम्।

ज्ञानं नराणा मधिको विशेषो—

ज्ञानेन हीना पशुभिः समानाः ॥३१२॥

भोजन, निद्रा, भय, मैथुन ये मनुष्य और पशुओं के समान ही हैं, किन्तु मनुष्यों को केवल ज्ञान ही विशेष है ज्ञान से रहित नर पशु के समान है॥ ३१२॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्ण तालैः

दूरी कृता करी वरेण मदांध बुध्या।

तस्यैव गंड युग मंडन हानि रेषा—

भृंगाः पुनर्विकच पद्मवनेवसंति ॥३१३॥

यदि मदान्ध बुद्धि से गजराज मद प्रेमी भौंरों को हटा तो यह उसीके दोनों गण्डस्थल की शोभा की हानि हुई, भौंरा तो फिर भी विकसित कमल वनमें ही रहता है। तात्पर्य यह है कि यदि किसी निर्गुण मदान्ध राजा के निकट कोई गुणी जा पड़े तो उस समय मदान्धों ने गुण का आदर न किया तो मानों अपनी लक्ष्मी की शोभाकी हानि किया है: क्योंकि काल की कोई सीमा नहीं है और पृथ्वी अनन्त है, गुणी का सत्कार कहीं न कहीं किसी समय में हो होगा॥ ३१३॥

राजा वेश्या यमश्चाग्निस्तस्करो बालयाचकः ।
पर दुःखं न जानन्ति अष्टमो ग्रामकण्टकः ॥३१४॥

राजा वेश्या यम, अग्नि और बालक याचक और आठवां ग्राम कण्टक अर्थात् ग्राम निवासियों को पीड़ा देकर अपना निर्वाह करने वाला ये दूसरे के दुःख को नहीं जानते ॥३१४॥

अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि ।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम् ॥३१५॥

हे बाले ! नीचे को क्या देखती हो तुम्हारा पृथ्वी पर क्या गिर पड़ा है ! तब स्त्री ने कहा, रे रे मूर्ख ! नहीं जानता कि मेरा तरुणता रूपी मोती चली गई, उसी को मैं ढूंढ़ रही हूं ॥३१५॥

व्यालाश्रयापि विफलापि सकण्टकापि
वक्रापि पंकिलभवापि दुरासदापि ॥
गंधेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तोः
एको गुणः खलु निहंति समस्तदोषान् ॥३१६॥

हे केतकी ! यद्यपि तूं सापों का घर है तो भी निष्फल है तुझ में कांटे भी हैं टेढ़ी भी है कीचड़ से तेरी उत्पत्ति है और तू दुःख से मिलती भी है, तथापि एक गन्धगुण से सब प्राणियों की बन्धु हो रही है। निश्चय है कि एक भी गुण सम्पूर्ण दोष को नाश कर देता है ॥३१६॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्मांडभांडोदरे

विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तः सदा संकटे ॥
रूद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ३१७

ब्रह्माण्ड रूपी चाक कुंभार जन्या जे विष्णु ने दश अवतार लइने संकट सदा सहन कर्या जे रुद्रे हाथमां खोपड़ी लइने भिक्षाटन कर्युं तेम सूर्यें हमेशा आकाशमां भ्रमण कर्या फिरे छेती येवा कर्मने नमस्कार छे ॥ ३१७ ॥

अवश्यं भावि भावानां प्रतिकारो भवेद्यदि ।
तदा दुःखैर्न लिप्येरनलरामयुधिष्ठिराः ॥३१८॥

प्रारब्ध प्रमाणे भोगववु पड़ेछे, कदाचत अटका वेतो यणदुःख लेपायमान करतुं नथी जेमके नल, राम, युधिष्ठिर ॥ ३१८ ॥

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥३१९॥

अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरद्वार) काशी, कांची, उज्जैन, द्वारिकापुरी, जगन्नाथपुरी ये सात मोक्षपुरी छे ३१९

येन यत्रैवं भोक्तव्यं सुखं वा दुःखमेववा ।
स तत्र बध्वा रज्वेव बलाद्दैवेन नीयते ॥३२०॥

जने जेजग्या पर सुख अथवा दुःख भोगवावुंछे । ते जग्या

पर जेम दोरड़ी थी कोई ने बांधी लइ जाय ते रीते दैवतेनेते स्थले लइजायछे ॥ ३२० ॥

नीचाश्रयोन कर्तव्यः कर्त्तव्यो महदाश्रयः ।
अजा सिंहप्रसादेन आरुढो गजमस्तके ॥३२१॥

नीचनो आश्रय नहीं करतां, मोटानोंज आश्रय करवो जेम बकरो सिंह ना प्रसादे हस्ती नीमस्तकनी पदवी पाम्यो ।३२१

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी
दैवं प्रधान मितिका पुरुषा वदन्ति ॥
देवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥३२२॥

उद्योगी पुरुष मनुष्यमां सिंह जेवोछे जेतेनेज लक्ष्मी प्राप्तथायछे निरुद्यमी पुरुष दैवनेज प्रधान मानेछे, परन्तु दैवने मुकीने शक्ति अनुसार उद्योग करयत्ने करीने जे सिद्धि न न थायतो पछी कोने दोष देवो ? ॥ ३२२ ॥

अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ।
अनाश्रया न शोभन्ते पंडिता वनिता लताः ॥३२३॥

मणिक उत्तमछे, पण कंचनना समागम वगर शोभतुं नथी, तेज प्रमाणे विद्वान, स्त्री, अनेवेल ये सारा आश्रय वगर शोभता न थी (वृद्धि पावता नथी) ॥ ३२३ ॥

जामाता पुरुषोत्तमो भगवती लक्ष्मी स्वयं कन्यका ।
दूतोयस्य बभूव कौशिक मुनीर्यज्वावसिष्ठः स्वयम् ॥
दाताश्री जनकः प्रदान समये चैकादशस्याग्रहाः ।
किंभूमो भवितव्यतां हतविधे रामोऽपियातो वनम् ३२४

जमाइ पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी छे ने साक्षात् लक्ष्मी जेवी कन्याछे (सीताजीछे) तथा विश्वामित्र जेवादूतछे, वशिष्ठ जेवा गोरछे, ने जनक जेवातो कन्यादान आपनारछे जेजे समे लाभ भुवनमां जेजे वधाग्रहछे येवुं मुहुर्त लीधाछतां पण प्रारब्धनी वातशुं कहेवी के रामचन्द्र जी ने वनमां जवुं पड्यु ॥ ३२४ ॥

क्वचित्पाणी प्राप्तं घटितमपि कार्यं विघटय ।
त्यशक्यं केनापि क्वचिद् घटभानं घटयति ॥
तदेयं सर्वेषामुपरीपरितो जाग्रति विधा ।
वुपालम्भः कोऽयं जनतनु धनोपार्जनविधौ ॥३२५॥

कोई वखते हाथमां आवेलुं काम चाल्युं जायछे । जे कोई वखते न जनीशके तेवुं काम वनीजायछे । तेवीरीते सौ ना विधि जाग्रत रहे लोछे, तो पछी, मनुष्य ने धन सम्पादन करवामां दोष को दोष कोने देवो ? ॥ ३२५ ॥

ऊद्योगः कलहः कण्डू द्युतं मद्यं परस्त्रियः ।

आहारो मैथुनं निद्रा सेवनात्तु विवर्धते ॥ ३२६ ॥

उद्योग. कजीयो, खुजली, भुगार, दारुनुं व्यसन, पराई स्त्री, आहार, रति सुख, निद्रा, एटली वस्तुनुं जम जेम सेवन करेतेमवृद्धि थायेछे ॥ ३२६ ॥

खरं, श्वानं, गजं मत्तं रण्डां च बहु भाषिणीम्
राजपुत्रं कुमित्रं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥३२७॥

गधेड़ो. कुतरो, हाथी, (मदोन्मत्त) वाचाल स्त्री, राज-कुमार, अने नठारो मित्र ए सर्वनो दूर थी त्याग करवो ३२७

कुशला शब्द वर्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालकाइव ॥३२८॥

फाल्गुणमां जेम वालको मोढे थी मात्र बोले छे पण विषयों मां अशक्त तेमज कलियुग मां वेदान्तिओ वातों करवामां कुशलछे, पणचालवामां न थी ॥ ३२८ ॥

परदारं परद्रव्यं परिवादं परस्य च।
परिहासं गुरोः स्थाने चापल्य च विवर्जयेत् ॥३२९

वीजानी स्त्री अन्यनुं द्रव्य, वीजानीसाथे वादविवाद, अन्य पुरुषनी मशकरी, अने मोटं ठेकाणो डहा इनको त्याग करवो ॥ ३२९ ॥

कोकिलानां स्वरोरूपं नारी रूपं पतिव्रत्तम्।
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम् ॥३३०॥

कोयलनु रूप तेनो स्वर,छे नारी नू रूप पतिव्रता छे, कुरूपानु रूप विद्या अने तपस्विनु रूपते क्षमा छे ॥ ३३० ॥

पादपानां भयं वातात्पद्मानां शिशिरो भयम् ।
पर्वतानां भयं वज्रं साधुनां दुर्जनाद्भयम् ॥३३१॥

झाड ने पवननो भय छे, कमल ने शियालानो भय छे, पर्वतने वज्रनो भय छे अने साधु पुरुषने दुर्जननो भय छे ॥ ३३१ ॥

अतिपरिचयादवज्ञा संततगमनादनादरो भवति ।
मलये भिल्लपुरान्ध्री चन्दनतरुकाष्ठ मिन्धनंकुरुते ॥३३२॥

अति परिचय राखवाथी मान भंग थई अनादर थाय छे, जेम मलयाचल पर्वतने विषे वसनारी भिल्लनी स्त्रीओ चंदनना काष्ठने जलाती छे ॥३३२॥

अनुचितकर्मारंभः स्वजनविरोधो बलीयसी स्पर्धा ।
प्रमदाजनविश्वासो मृत्युद्वाराणि चत्वारि ॥३३३॥

न करवानु काम करवुं सगां संबधो साथे विरोध, बलवान् साथे स्पर्धा (हुज्जत) करवी ने स्त्री जात थी विश्वास राजनों ये चार मृत्युनां घर छे ॥ ३३३ ॥

आपद काले मित्रपरीक्षा शूरपरीक्षारणाङ्गणेभाति ।
विनये वंशपरीक्षा स्त्रयः परीक्षा निर्धने पुंसि ॥३३४॥

आपद आव पडे त्यार मित्रनी परीक्षा थाय छे, तेम शूरनी

परीक्षा युद्धना स्थान ऊपर, ने कुलनी परीक्षा तेना विनय उपरथी, नें स्त्रीनी परीक्षा दुर्बल अवस्थामां थाय छे ।। ३३४ ॥

मुखं पद्मदलाकारं वाचा चंदनशीतला ।

हृदयं क्रोधसंयुक्तं त्रिविधं धूर्त लक्षणम् ॥३३५॥

मुख कमलना पुष्प जेवुं वाणी चन्दनना जेवी शीतल अने हृदय क्रोध युक्त ये त्रण धुर्तनां लक्षण छे ।। ३३५ ।।

संपूर्णेऽपि तडागे काकः कुम्भोदकं पिषति ।

अनुकूलेपि कलत्रे नीचः परदारलम्पटो भवति॥३३६॥

संपूर्ण तलाव भर्युं होय तथापि कागडो स्त्रीनां मस्तक उपरनां घडामांथी पाणी पीए छे तेनी माफक नीच पुरुष पोताने अनुकूल स्त्री छतां परदारा सेवन करे छे ।। ३३६ ।।

अबला यत्र प्रबला बालो राजा निरक्षरो मन्त्री ।

नहि नहि तत्र धनाशा जीवितआशा दुर्लभो भवति ३३७

ज्यां स्त्री बलवान होय राजा बालक होय मंत्री मूर्ख होय त्यां धननी आशा तो शेनी पण जीववानी आशा में दुर्लभ जाणवी ॥ ३३७ ॥

इन्दुकैरविणिव कोकपटलीवाम्भोजिनीवल्लभं ।

मेघञ्चातकमण्डलीव मधुप श्रेणीवपुष्पव्रतम् ॥

माकन्दंपिक सुन्दरीव रमणो वात्मेश्वरं प्रोशितम् ।

चेतोवृत्तिरियं सदा नृपवरत्वांद्रष्टु मुत्कंठते ॥३३८॥

जेम कुमुदिनी चन्द्र ने जेवा इच्छा करेछे चक्रवाकनी पंक्ति सूर्य ने जेवा उत्कण्ठित छे। पपैयार्नां मण्डली मेघने जोवा उत्कण्ठा करेछे तेम भवरायो पुष्पना समूह ने जोवा इच्छेछे ने कोयल आंवा ने जोवा इच्छा राखेछे अने प्रोशित पति का परदेश मां गयेला पति ने जोवा इच्छेछे तेम अमारा चित्त नी वृत्ति सर्वदा तमने जोवा उत्कंठा करे छे ॥ ३३८ ॥

दोषाकरोऽपि कुटिलोपि कलंकितोपि ।
मित्रावसाव समयेपि हितोदयेऽपि ॥
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभ तामुपैति ।
नैवाश्रितेषुगुण दोष विचारणा स्वात् ॥३३९॥

चन्द्रमा जोके दोषाकार छे कुटिल छे, कलंक वाणो अने मित्रनो अस्त पामवा वा समयमां उदय पामनार छे तोपण सदा शिव ने प्यारो छे एटले जे पोतानो आश्रित होय तेना गुण दोषनो विचार नहि करवो ॥३३९॥

अविवेकमति नृपति मंत्रिषु गुणवत्सु वक्रीतग्रीवः ।
यत्रखलाश्चप्रबला तत्र कथं सज्जना वसरः ॥३४०॥

ज्यां राजा तथा मन्त्री अविवेकी होय तथा गुणवाननी बात सांभलतां वांकी डोक करता होय अने दुष्टजन प्रबल होय त्यां सारा माणस नोज वसर क्यां थीज होय ॥३४०॥

मांन्धाता च महीपतिःकृतयुगा लंकारभूतोगतः ।

सेतुर्येनमहोदधौ विरचितः क्वासौदशा स्यान्तकः ॥
अन्येचापि युधिष्ठिर प्रभृतयो यातादिवं भूपते ।
नैकेनापि समङ्गता वसुमति नूनंत्यथा यास्यति ३४१

हे राज मांधाता राजा के जे सघली पृथ्वीनो पति अने सतयुग ना घरेणा जेवो हतो तेपण मरी गयो, रामचन्द्रजीके जेणे महासागर मां पाज वांधी अने रावण ने मार्यो तेपण हाल क्यां छे। बीजा युधिष्ठिर आदि राजाओपण स्वर्ग वासी थयाछे। ते माना कोई साथे पृथ्वी गई नथी पण तमारी साथे आवशे खरी ॥ ३४१ ॥

रामे प्रव्रजनं बलेर्नियमनं पांडोः सुतानां वनम् ।
वृष्णीनां निधनं नलस्य नृपते राज्यात्परिभ्रंशनम् ॥
कारागारनिशेवणञ्च मरणं सचिन्त्य लंकेश्वरो ।
सर्वंकालवशेन नश्यतिनरः कोवापरित्रायते ॥३४२॥

अर्थ—राम ने बनबास वली राजाने बन्दी पाण्डवोंने बनवास यादवों का नाश नल राजा नु पद भ्रष्ट रावण ने सहस्त्रार्जुन नु बन्दी खानु ने अन्ते राम ना हाथ थी मरण माटे सर्व लोको कालने लीधेज दुःखी थायछे । ३४२ ॥

सर्वेवर्णाः शाक्त सर्वं न च शेवा न च वैष्णवा ।
आदि शक्तिमुपासन्ते गायत्रिम् वेदमातरम् ॥३४३॥

अर्थ—सभी वर्ण के लोग शक्ति उपासक थे, न शैव थे न वैष्णव। आदि-शक्तिकी उपासना करने वाले थे। गायत्री वेद की माता मानी जाती थी। ३४३ ॥

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनच्छयापि संस्पृष्ट दहतेन किं पावकः॥३४४॥

अर्थ—भगवान के स्मरण से पाप का हरण होता है, चाहे दुष्ट स्वभाव का भी हो जैसे इच्छा बिना अग्नि को छूने से जला देती है॥ ३४४॥

एतदक्षरं गार्ग्यं विदित्वाऽस्मिन्।
लोके जुहोतीयजते॥
यस्तप्यते बहुनि वर्ष सहस्त्राण्यन्तु।
व देवास्य तद्भवति॥ ३४५॥

अर्थ—हे गार्गी जा अविनाशी परमेश्वर ने जान्या बिना कोई हजारों वर्ष आ लोकमां होय याग तपस्या करे। तथापि ते स्थायी फल ने प्राप्त करतो नथी॥ ३४५॥

यवोयत दक्षरंगार्ग्य विदित्वा स्मालोकान प्रैति सकृपण
अथयएतदक्षरं गार्ग्ये विदित्वा
स्माल्लोकानप्रैति सब्राह्मणः॥३४६॥

अर्थ—हे गार्गी जेमाणस अविनाशी परमेश्वर ने न जानता ए लोकमां मरी जाय,. ते कृपापात्र अने दीन छे। अनेजें अवि-

नाशी परमेश्वर ने जाणि ने आ लोक माथी जायछे ते ब्राह्मण छे ॥ ३४६ ॥

सुलभाः पुरुषा लोके सततंप्रियवादिनः ।
अप्रिय स्यापि पथ्यस्य श्रोतावक्ता च दुर्लभा ॥३४७

अर्थ—आ दुनियां मां हमेशा मोढे मीठू बोल नार घणामाण सो हैं सहेलाइसे मिले छे परन्तु कडुवु पण हितकर्ता वचन सांभल नार तेमज कहे नार मलवा मुश्किल छे। ३४७ ॥

संतोषः परमोलाभः सतसंग परमं धनं ।
विचारं परमं ज्ञानं शमं च परमं सुखं ॥३४८॥

अर्थ—सन्तोष तेजमोटो लाभ, सतसंग नी प्राप्ति तेज मोटी दौलत, सत्य असत्य ना विचार येज सारा मांसारूं ज्ञान अने शमता तेज माटूं सुखछे। ३४८ ॥

सर्पाः पिवंति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वन गजा बलि नो भवन्ति।
कन्दैः फलै मुनिवरा त्क्षपयंति कालं ।
संतोष एव पुरुषस्य परं निधान ॥३४९॥

अर्थ—सांप पवन पीते रहे छे पण दुर्बल थता नथी, हाथियों बनना सूखो घास खावा थी पण बल हीन थता नथी। श्रेष्ट मुनियों कन्द तथा फल ना आहार कर काल खपावेछे, मतलब के सन्तोष तेज माणसनों मोटो भण्डार छे॥ ३४९ ॥

सा श्रोर्या नमदं कुर्याते स:सुखी तृष्णयोज्जित: ।
तन्मित्रो यत्र विश्वास: पुरुषोयो जितेन्द्रिय: ॥३५०॥

अर्थ—जेने दौलत मल्या छतां पणते वाचन अहंकार नथी तेज श्री मन्त जेणे तृष्णा जीती छे तेज सुखी जेनों विश्वास छे तेज मित्र अनेजेणे इन्द्रियों वश करीछे । तेज पुरुष छे । ३५० ॥

समेशुचौ वन्हि बालुका विवर्जते शव्दजला श्रयादिभि:
मनोनुकूले नतु चक्षु पोडने गुहानिवाश्रयणे प्रयोजयेत

अर्थ—एक सरखी शुद्ध अग्नि अने रेता विना शब्द वाणा अने मण्डपादि वाली जगा भी अथवा जे मन ने अनुकूल लागे। अने आखने पीड़ादायक न होय एवां निर्वात गुहा मां चित ने परमात्मा मां लगाड़वुं । ३५१ ॥

न दुर्जन:साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्षमाण: ।
आमूलसिक्त: पयसा घृतेन
न निम्बवृक्षोमधुरत्वमेति ॥३५२॥

दुर्जनपुरुषको वहुप्रकार शिक्षा देने पर भी साधुदशा को प्राप्त नहीं होते है जेसे निम्बका पेड़ को मूलमें घृत ओर दूध का सिंचन करने पर भी मधुरता नही होती है ॥३५२॥

वापि कूप तडागानां आरामे सुरवेश्वनाम् ।
उच्छेदने निशंको सविप्रो म्लेच्छमुच्यते ॥३५३॥

वावली कुंवा तलाव वगीचा रवेश वालामकान शंका रहीत जो नाश कर देता है सो ब्राह्मण म्लेच्छ कहलाता है ॥३५३॥

सूचना

प्रिय पाठकगण,

युद्ध के कारण कागज की मंहगी तथा अभाव होजाने से और मेरा स्वास्थ्य ठीक न रहने से पुस्तक छपाने में विलम्ब हुवा। फिर भी अब तक जो साहित्य विभाग की छपाई हो चुकी है। उसकी जिल्द बनवाकर इच्छुक जनों के समीप प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है कि इसके अवलोकन से आप लोगों को सन्तोष होगा।

निवेदक—

स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ

मुद्रक—

श्री धन्नूलाल, प्रबोध प्रेस, राजमन्दिर, काशी।

❀ ॐ ❀

ज्ञान भंडार

साहित्य प्रकरण भाग २

स्त्रीविनश्यति रूपेण ब्राह्मणो राजसेवया ।
गावोदूर प्रचारेण हिरण्यं लोभलिप्सया ॥३५४॥

स्त्री का रूप से, ब्राह्मण का राज्य की सेवा करने से, गाय का दुर चराने से और लक्ष्मी का अति लोभसे नाश होता है ॥३५४॥

स्पृशन्नपि गजोहन्ति जिघ्रन्नपि भुजंगमः ।
हसन्नपि नृपोहन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ॥३५५॥

हाथी स्पर्श करने से हनन करता है, सर्प सूंघने से दंश करता है, राजा हंसता हुआ भी मार डालता है और दुर्जन मान देने से भी हनन करता है ॥ ३५५ ॥

उदयति यदिभानुः पश्चिमोदिग्विभागे
विकसति यदिपद्मं पर्वतानां शिखाग्रे ।

प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्नि-
र्न चलति खलुवाक्यं सज्जनानांकदाचित् ॥३५६॥

सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हो, कमल पर्वत के शिखर पर विकसित हो, मेरु पर्वत चलायमान हो, अग्नि शीतल हो जाय तो भी सज्जन पुरुषों का बचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता ॥ ३५६ ॥

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ॥ ३५७ ॥

जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने से उसमें विष की ही बृद्धि होती है, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य को ज्ञान देने से वह शान्त नहीं होता, उल्टा क्रोधित हो जाता है ॥ ३५७ ॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयतेकर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ ३५८ ॥

किया हुआ शुभाशुभ कर्म अवश्य भोगना ही होगा चाहे कोटि कल्प क्यों न व्यतीत हो जांय बिना भोगे कर्म का नाश नहीं होता ॥ ३५८ ॥

मलयाचल गंधने त्विन्धनं चन्दनायते ।
तथा सज्जन संगेन दुर्जनः सज्जनायते ॥३५९॥

मलयाचल की सुगंध से जलाने वाली लकड़ी भी सुगन्धित

चन्दन हो जाती है, उसी प्रकार सज्जन की संगत से दुर्जन भी सज्जनता प्राप्त कर लेता है ॥ ३५९ ॥

स्थानं प्रधानं न बलं प्रधानं ।
स्थानेस्थितः का पुरुषोऽपि शूरः ॥
जानामि नागेन्द्र तव प्रभावं ।
कंठेस्थितो गर्जसि शंकरस्य ॥३६०॥

स्थान ही प्रधान है बल प्रधान नहीं, स्थान पर रहा हुआ कायर पुरुष भी शूरवीर हो सकता है। हे नागेन्द्र ! तेरा प्रभाव मैं जानता हूं कि तुम शंकर की ग्रीवा में रह कर गर्जना करते हो ॥ ३६० ॥

पुण्यतीर्थे कृतंयेन तपः क्वाप्यतिदुष्करम् ।
तस्यपुत्रोभवेद्वश्यः समृध्या धार्मिकः सुधीः ॥३६१॥

जो पुण्यरूपी क्षेत्र में अति दुष्कर तप करता है उसका पुत्र आज्ञांकित, समृद्धियुक्त, धार्मिक और सुबुद्धिवाला होता है ।३६१।

कल्पद्रुमः कल्पितमेवसूते
साकामधुक्कामि तमेवदोग्धिः ।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेवदत्तो
सतां हि संगः सकलं प्रसूतेः ॥३६२॥

जिस प्रकार कल्पवृक्ष इच्छित फल देता है कामधेनु से

इच्छित फल प्राप्त होता है, चिंतामणि रत्न भी मनोरथ पूर्ण करता है। उसी प्रकार सत्पुरुष की संगत से सर्व कार्यों की सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३६२ ॥

गुणवज्जनसंसर्गाद्यातिस्वोंऽपि गौरवम् ।
पुष्पमालाप्रसंगेन सूत्रं शिरसि धार्यते ॥३६३॥

गुणी पुरुष के संसर्ग से सब कोई गौरव युक्त हो जाता है जिस प्रकार पुष्प की माला के संसर्ग से सूत का डोरा भी मस्तक पर धारण किया जाता है ॥ ३६३ ॥

नरस्याभरणंरूपं रूपस्याभरणं गुणः ।
गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा ॥३६४॥

मनुष्य का भूषण सौंदर्य, सौंदर्य का भूषण सद्गुण, सद्गुण का भूषण ज्ञान, और ज्ञान का भूषण क्षमा है ॥३६४॥

क्षमाबलमशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ।
क्षमावशीकृतिर्लोके क्षमया किं न सिद्ध्यति ३६५

जिस प्रकार अशक्त का बल क्षमा है उसी प्रकार सशक्त का भी भूषण क्षमा ही है, क्षमा पृथ्वी पर वशीकरणभूत है, इसलिये क्षमा से क्या सिद्ध नही हो सकता ? ॥३६५॥

परेषां क्लेशदं कुर्यान्न पैशुन्यं प्रभुप्रियम् ।
पैशून्येन गतोराहो श्चंद्रार्कौभक्षणीयताम् ॥३६६॥

वड़े मनुष्य को प्रिय किन्तु दूसरे को क्लेश उत्पन्न करने वाली ऐसी चुगली न करनी चाहिये। देखो चंद्र और सूर्य चुगली करने से राहु के भक्ष्य होगये॥ ३६६॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥ ३६७॥

मधुर बोलने से सब मनुष्य संतुष्ट होते हैं. इसलिये हमेशा मधुर भाषण करना, बोलचाल में कृपणता न दिखलाना चाहिये॥ ३६७॥

लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्रबांधवे।
जिह्वाग्रे बंधनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम्॥३६८॥

जिस प्रकार लक्ष्मी.मित्र और भाई जीभ में बास करते हैं उसी प्रकार बंधन और मुक्ति भी जिह्वा में हैं॥ ३६८॥

आत्मवुद्धिः सुखायैव गुरुवुद्धि-र्विशेषतः।
परंबुद्धि र्विनाशाय स्त्री वुद्धिःप्रलयावहा॥३६९॥

अपनी बुद्धि अनुसार कार्य्य करना सुखकर होता है, किन्तु गुरू की बुद्धि अनुसार कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है किन्तु दूसरों की और स्त्रियों की बुद्धि अनुसार कार्य करने से अनिष्ट परिणाम प्राप्त होता है॥ ३६९॥

शोभन्ते विद्यया विप्राः क्षत्रिया विजयश्रिया।
श्रियानुकूलदानेन लज्जया च कुलांगनाः॥२७०॥

जिस प्रकार विद्या से ब्राह्मण शोभायमान होता है, क्षत्रिय विजय की कीर्ति से शोभायमान होता है, लक्ष्मी सुपात्र के पास जाने से शोभायमान होती हैं, उसी प्रकार लज्जा से गृह लक्ष्मी शोभायमान होती है ॥ ३७० ॥

पुत्रपौत्रवधूभृत्यैः संपूर्णमपि सर्वदा ।
भार्याहीनगृहस्थस्य शून्यमेवगृहं मतम् ॥३७१॥

पुत्र पौत्र और नौकर चाकरों से गृह शोभायमान होता है किन्तु स्त्री शून्य गृहस्थ का घर शोभायमान नहीं होता ॥३७१॥

अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैव च नैव च ।
अजापुत्रं बलिंदद्याद्दैवोदुर्बलघातकः ॥३७२॥

अश्व, हस्ती और व्याघ्र का कोई बलिदान नहीं देता किंतु बकरे का ही बलिदान दिया जाता है इससे सिद्ध होता है कि दैव भी दुर्बलों का घातक होता है ॥ ३७२ ॥

नास्तियज्ञंस्त्रियः किंचित्व्रतं नैवोपासनं ।
या तु भर्तरिशुश्रूषा तया स्वर्गं जयत्यसौ ॥३७३॥

जो स्त्री अपने पती की सेवा में अनुरक्त रहती है उसको यज्ञ व्रत उपवास आदि की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि वह तो सेवा से ही स्वर्ग प्राप्त कर सकती है ।३७३।

भर्तादेवोगुरुर्भर्त्ता धर्मतीर्थं व्रतानि च ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्यपतिमेकं भजेत् सती ३७४

सती स्त्री के लिये पती ही देव, गुरू, धर्म, तीर्थ और व्रत है इसलिये सब बातें छोड़ कर सती स्त्री को पती सेवा ही करनी चाहिये ।।३७४।।

क्षांतितुल्यंतपोनास्ति संतोषात्परमं शुभम् ।
नास्तितृष्णापरो व्याधिर्न च धर्मोदयापरः ।३७५।

शान्ति समान कोई तप नहीं है संतोष समान कोई सुख नहीं है तृष्णा समान कोई बाधा नहीं, और दया समान कोई धर्म नहीं है ।।३७५।।

उपभोक्तुं न जानाति श्रियं प्राप्तोऽपि मानवः ।
आकण्ठजलमग्नोऽपिश्वालिहत्येव जिह्वया ।३७६।

लक्ष्मी का प्राप्त करके जो मनुष्य उसका उपयोग करना नहीं जानता वह मनुष्य उस कुत्ते के समान है जो गले तक पानी में रहता हुआ भी पानी जीभ से चाटता है ।।३७६।।

सांसारिक सुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मितिवादिनम् ।
कर्मब्रह्मोभय भ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यज यथा ।।३७७।।

संसार के सुख में निमग्न होते हुए भी मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ ऐसे कहने वाले को क्रिया और ब्रह्मत्व से भ्रष्ट होने वाले तुच्छ मनुष्य की तरह त्याग देना चाहिये ।।३७७।।

सत्यानुचारिणी लक्ष्मीः कीर्तिस्त्यागानुसारिणी ।
अभ्याससारिणी विद्या बुद्धिकर्मानुसारिणी ३७८

जिस प्रकार लक्ष्मी सत्यानुचारी है, कीर्ति दान का अनुसरण करती है उसी प्रकार विद्याभ्यास का और बुद्धिकर्म का अनुसरण करती है ॥३७८॥

अन्नदानात्परं दानं विद्यादानमतः परम् ।
अन्नेनक्षणिकातृप्तिर्यावज्जीवन्ति विद्यया ॥३७६॥

अन्नदान श्रेष्ठ है विद्यादान इससे अधिक श्रेष्ठ है क्यों कि अन्यदाने से क्षणित तृप्ति होता है किन्तु विद्या दान के यावत् जीवन तृप्ती प्राप्त होता है ॥३७९॥

लोभमूलानि पापानि रसमूलानि व्याधयः ।
इष्टमूलानिशोकानि त्रिणिस्यक्त्वासुखीभव ३८०

लोभ पाप का मूल है, स्वाद व्याधि का मूल है, प्रीति शोक का मूल है इसलिये तीनों को त्याग करने से ही मनुष्य सुखी हो सकता है ॥३८०॥

विषस्य विषयाणां हि दृश्यते महदन्तरम् ।
उपभुक्तंविषं हन्ति विषयः स्मरणादपि ॥३८१॥

विष और विषय में बहुत ही भिन्नता है क्यों कि विष खाने से नाश करता है किन्तु विषय का चिन्तन मात्र से नाश करता है ॥३८१॥

आज्ञाभंगोनरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम्
पृथक्शय्या च नारिणामशस्त्रवध मुच्यते ३८२

राजा की आज्ञा का उल्लंघन ब्राह्मण का मस्तिष्क का छेदन स्त्री की पुरुषसे भिन्न शय्या यह तीनों हत्याके समानहै ॥३८२॥

पंडितैः सहसांगत्यम् पण्डितैः सह संकथाः ॥
पण्डितैः सहमित्रत्वं कुर्वाणोनावसीदति ॥३८३॥

पंडित के साथ गमन बातचीत और मित्रता करनेवाला कभी दुःख को प्राप्त नहीं होता ॥३८३॥

मातृवत् परदाराणि परद्रव्याणिलोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः ॥३९०॥

पर स्त्री को माताके समान तथा दूसरे का धन मिट्टीके समान और सर्व आत्मा को अपनी आत्मा के समान देखता है वही पंडित है ॥३८४॥

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ॥
निद्रातंद्राभयंक्रोधंमालस्य दीर्घसूत्रता ॥३८५॥

इस दुनियां में अभ्युदय चाहने वाले मनुष्य को निद्रा तंद्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता आदि छः दुर्गुणों का त्याग करना चाहिये ॥३८५॥

न यस्य चेष्टितं विद्यान्नकुलं न पराक्रमम् ।
न तस्यविश्वसेत्प्राज्ञो यदीच्छेच्छ्रियमात्मनः ३८६

अपना श्रेय चाहने वाले सुज्ञ मनुष्य को चाहिये की वह

उस मनुष्य का विश्वास न करें जिसके आचार, कुल और पराक्रम से अनभिज्ञ हो ॥३८६॥

वचस्तत्रैववक्तव्यं यत्रोक्तंसफलं भवेत् ।
स्थायिभवतिचात्यंन्तराग शुक्लपटेयथा ॥ ३८७ ॥

जिस प्रकार धवल वस्त्र पर पूर्ण रूप से रंग लग जाता है उसी प्रकार जहाँ फल की प्राप्ति हो वहां पर ही बोलना चाहिये ॥३८७॥

प्रत्यक्षेगुरूवः स्तुत्याः परोक्षेमित्र बान्धवाः ।
कर्मान्तेदांषभृत्याश्च पुत्रानैव तथा स्त्रियः ॥३८८॥

गुरु की स्तुति उनके समक्ष करना चाहिये मित्र और भाई की बड़ाई दूसरों के पास करनो चाहिए परन्तु स्त्री और पुत्र की बड़ाई कभी न करनी चाहिये ॥३८८॥

उत्तमंस्वार्जितंभुक्तं मध्यमं पितुरर्जितम् ।
कनिष्ठं भ्रातृवित्तञ्च स्त्रीवित्तमधमाधमम् ॥३८६॥

अपनी स्वयं जाति परिश्रम से उपार्जन कर व्यय करना यही उत्तम है पिता के उपार्जन पर निर्वाह करना वह मध्यम भाई के उपार्जन से जीवन व्यतीत करना कनिष्ठ और स्त्री के उपार्जन किया हुआ धन का उपयोग करना महा अधम है ॥३८९॥

घृतकुम्भसमानारी तप्ताङ्गारसमः पुमान् ।
तस्माद्घृतं च वह्निंच नैकत्रस्थापयेद्बुधः ॥३६०॥

घी के कुम समान स्त्री है और पुरुष अग्नि समान है इसलिये सुज्ञ मनुष्य को चाहिये कि घी और अग्नि दोनों पास न रक्खें इससे अनिष्ठ होता है ॥३९०॥

प्रथमेनार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनं।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति ॥३९१॥

जिसने बाल्यावस्था में विद्या नही पढ़ी युवावस्था में लक्ष्मी प्राप्त नही की प्रौढ़ावस्था में पुन्य संचय नहीं किया वह वृद्धावस्था में क्या कर सकेगा ॥३९१॥

मृगामृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति
गावश्च गोभि स्तुरगास्तुरंगैः।
मूर्खाश्चमूर्खैः सुधियः सुधीभिः
समान शीलव्यसनेषु सख्यम् ॥३९२॥

जैसे मृग मृगों के सहवास में रहता है गौ गाय के संसर्ग में में अश्व अश्वों के साथ रहता है वैसे ही मूर्ख लोग मूर्खों का और बुद्धिमान विद्वानों का संग चाहता है इससे सिद्ध होता है कि समान गुणशीलों से ही मित्रता होती है दुसरों से नहीं ॥३९२॥

कुपात्रदानाच्च भवेद्दरिद्रो
दारिद्र्यदोषेण करोति पापम्।

पापप्रभावान्नरकं प्रयाति
पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी ॥ ३९३ ॥

कुपात्र को दान देने से मनुष्य दरिद्र होता है और दरिद्रता के दोष से पाप कर्म करता है पापा चरण करने से नर्क की प्राप्ति होती है इस प्रकार वह बार बार दरिद्री और पापी होता है ॥३९३॥

येशान्तदान्ता श्रुतिपूर्ण कर्णा
जितेन्द्रियाः स्त्रीविषये निवृत्ताः ।
प्रतिग्रहे संकुचिताभिहस्ता
स्तेब्राह्मणा स्तारयितुं समर्थाः ॥३९४॥

शान्त, सहनशील, वेद शास्त्रों का ज्ञाता, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, स्त्री संसर्ग से विरक्त, दान ग्रहण करने में सन्तुष्ट होने वाले ब्राह्मण में ही उद्धार करने की सामर्थ्य होती है ॥३९४॥

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्वं
क्षमादया शान्ति जनप्रियत्वम् ।
निर्लोभी दाता भयशोकहीनं
ज्ञानस्यचिह्नं दशलक्षणानि ॥ ३९५ ॥

क्रोध का न होना वैराग्य, इन्द्रियों पर विजय, क्षमा, दया,

शान्ति, लोक प्रियता, निर्लोभी, दान शीलता, भय और शोक रहित यह दश ज्ञान के लक्षण हैं ॥ ३९५ ॥

वनेषु दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेषु पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥३९६॥

रागी और विषयी पुरुष को वन में भी यह दोष रह सकते हैं अपने घर में रह कर भी जितेन्द्रिय होकर रहना वह तप करने के बराबर होता हैं जो पुरुष अनिन्द्य कर्म और विषय से निवृत्त रहता है उसका घर ही तपोवन समान है ॥३९६॥

नभोभूषापूषा कमलवन भूषा मधुकरो
वचोभूषासत्यवरविभवभूषावितरणम्।
मनोभूषामैत्रीमधुसमयभूषामनसिजः
सदोभूषाशक्ति सकलगुणभूषाचविनयः॥३९७॥

सूर्य आकाश का, भमरा कमल का, सत्य वाणी का, वैभव का दान, चित्त का मित्रता, बसन्त ऋतु का कामदेव, सत्य पुरुष का अच्छे वचन, और सर्व गुणों का भूषण विनय है ॥३९७॥

क्वचिद्भूमौशायी क्वचिदपि चपर्यंकशयनः
क्वचिच्छाकाहारीक्वचिदपिचशाल्योदनरुचिः

क्वचित्कंथाधारी क्वचिदपिचदिव्यांम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थंनगणयतिदुःखंन चसुखम् ३९८

कभी जमीन पर सोना पड़ता है, तो कभी सुंदर पलंग पर कभी बनस्पति खाकर रहना पड़ता है तो कभी मिष्ट भोजन मिलता है, कभी कौपिन पहनना पड़ता है, तो कभी दिव्य वस्त्र प्राप्त होते हैं, फिर भी बुद्धिमान पुरुष कार्य वश सुख और दुःख को नहीं समझते ॥३९८॥

प्रायेणात्रकुलान्वितं कुकुलजाः श्रीवल्लभंदुर्भगा
दातारं कृपणा ऋजूनृजवोवित्तांन्वितं निधनाः ।
वरूप्यापहताश्चकांत वपुषं धर्माश्रयंपापिनो
नानांशास्त्रविचक्षणंच पुरुषं निन्दन्तिमूर्खाजिनाः३९९

इस सृष्टि में स्वाभाविक तौर से नीच कुल वाले आम कुल वालों की, दुर्भागी भाग्यशालियों को, कृपण दातार की, दुष्टजन सत्पुरुषों की, निर्धन धनपति की, कुरुपवाला स्वरूपवालोंकी, पापी लोग धर्मिष्ठों की और मूर्ख विद्वानों की निन्दा करता है ॥३९९॥

यौवन धन संपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थायकिमुयत्रचतुष्टयम् ॥४००॥

नव यौवन धन की प्राप्ति प्रभुता, और विवेक शून्यता चारों अनर्थ कारी है, जिसमें यह चारों है, वह क्या अनर्थ नहीं कर सकता ॥४००॥

अस्त्रंगमयति प्रेतान्कोपोऽरीनन्नृतंशुना ।
पादस्प र्शंषुरक्षांसिदुष्कृ तिनवधूननम् ॥४०१॥

श्राद्ध के दिन रोने से उसका फल प्रेत को मिलता है क्रोध करने से शत्रु को फल मिलता है असत्य बोलने से फल श्वान को मिलना हैं पैर का स्पर्श करने से राक्षस को फल मिलता है और श्राद्ध का अन्न फेंकने से श्राद्ध का फल पापी को प्राप्त होता है ॥४०१॥

नाग्निमुखेनोपधमेन्न ग्नांनेक्षतच स्त्रियम् ।
नामेध्यंपूक्षीपदेग्नौनचपादौपूतापयेत् ॥४०२॥

अग्नि को मुख से प्रज्वलित करना नहीं, नग्न स्त्री को देखना देखना नहीं, अपवित्र वस्तु अग्नि में डालना नहीं, और पैर के तलुओं को सेकना नहीं ॥४०२॥

अमावस्यागुरूहन्ति शिष्यंहन्ति चतुर्दशी ।
ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौतस्मातापरिवर्जयेत् ॥४०३॥

अमावस्या के दिन अध्ययन करने से गुरु का नाश होता है चतुर्दशी के रोज शिष्य का और अष्टमी और पूर्णिमा के दिन अध्ययन करने से वेद नहीं आता इसीलिए अध्ययनमें इन तिथियों को त्यागनां चाहिए ॥४०३॥

हिरण्यमायुरन्नंच भूर्गोश्चाप्योष तस्तनुम्र ।
अश्वचत्तु स्त्वचं वासो धृतं तेजस्तिलापूजा४०४

सुवर्ण और अन्न का दान लेने से आयु क्षिण होती है। पृथ्वी और गौ का दान लेने से शरीर कृश होता है, अश्व का दान लेने से चक्षु का वस्त्र का दान लेने से त्वचा का घृत का दान लेने से तेल का और तिल क दान लेने से सन्तति का नाश होता है ॥४०४॥

दुर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति ध्संगात्सुतो
लाभनाद्विप्रोऽनध्ययनात्कुलंकुतनंया
च्छीलंखलोयासनात् ह्रिमद्यादनवत्तेणादपि
कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयात्मैत्रीचा प्रण्या
त्समृध्दिरनया त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥४०५॥

दुष्ट मन्त्री से राजा का, स्त्री के संसर्ग से योगी का लाडप्यार से पुत्र का, अध्ययन न करने से ब्राह्मण को, कुपुत्र से कुल का दुर्जन की सेवा से स्वभाव का, मदिरा से लज्जा का, देख भाल न करने से खेती का प्रवास करने से स्नेह का, अविनय से मैत्री का अनीति से समृद्धि का, और अपात्र को दान देने से और प्रमाद से धन का नाश होता है ॥४०५॥

यध्धात्रानिजभालपट्टलिखितं स्तोकं मह द्वाधनं।
तत्प्रामोतीमरूस्थलेऽपिनितरां मेरौततोताधिकम्।
तद्धीरोभववित्तवत्सुकृपणां वृत्तिंवृथामाकृताः
कूपेपश्य पयोनिधावपिघटोगृह्णातितुल्यंजलम् ॥४०६॥

विधात्री ने जिसके भाग्य में कम या अधिक जो धन लिखा है, वह निर्जन स्थान में भी प्राप्त होता है। इससे अधिक मेरा पर्वत पर जाने से भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये धैर्य धारण करना और धनपतियों के पास अधिक कृपणता न दिखलाना क्योंकि घट कुण्ड और समुद्र से समान ही जल भरता है ॥४०६॥

जाड्यंह्रीमति गण्यतेव्रतरूचौदम्भः शुचौ कैतवं
शूरेनिर्घृणता मुनौविमतितादैन्यंप्रियालापिनी।
तेजस्वीन्य वलिसता मुखरतावक्तयंशक्तिः स्थिरे
तत्कोनामगुणोभवेत्सगुणीनां योदुर्जनैर्नांकिताः ॥४०७॥

लज्जा शील पुरुषको मूर्ख, व्रत करने वालेको दम्भी, पवित्रको धूर्त शूरवीर को निर्दय, सरल को बुद्धिहीन, प्रियवक्ता को दीन तेजस्वी को गर्विष्ठ, चतुर को बकवादी और स्थिर को अशक्त कहते हैं तो गुणज्ञ पुरुषों में ऐसा कौन सा गुण है जिसको दुष्टों ने दोषी न बनाया हो ।।४०७।।

पितापुत्रौ सहासीतांद्वैविप्रो क्षत्रियावपि।
वृध्दौवैश्यो च शूद्रो च नत्वन्यावितरेतरम् ॥ ४०८ ॥

पिता और पुत्र, ब्राह्मण और ब्राह्मण क्षत्रिय और क्षत्रिय, वैश्य और वैश्य, शूद्र और शूद्र वृद्ध और वृद्ध यह सब एक साथ बैठ सकते हैं इसके विपरीत वर्ण वाले एक दूसरे के साथ नहीं बैठ सकते ॥४०८॥

वृत्रोमत्यदंप्रह्लादस्त्वाष्ट्रकायाधवादय
वृषपर्वाबलिर्बाणोमयश्चाथविभीषणः ।
सुग्रीवोहनुमानृक्षोगजोगृध्रोवणिक्पथः
व्याधःकुब्जाव्रजेगोप्योयज्ञपत्न्यस्तथापरे
तेनाधीत श्रुतिगणा नोपासीत महत्तमाः
अव्रतातपातपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥४०९॥

वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृपनर्वाबलि. वणिबाणासुर मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान. जाम्बवन्त, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधर, धर्म व्याधि, कुब्जा, व्रजांगना यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों की पत्नीयां और ऐसे दूसरे वहाने है वेदज्ञन थे न अधिक पढ़े लिखे भी थे महात्माओं की सेवा भी नहीं किया, और तप भी न किया था केवल सत्संग से ही मुझे प्राप्त हुए हैं ॥४०९॥

पंचैतेपांडुपुत्राः क्षितिपतितनया धर्मभीमार्जुनाद्याः
शूरासत्य प्रतिज्ञाः द्रढतरवपुषः ।
केशवेनापि गूढाः ते विराः पाणीपात्रेकृपणजनग्रहे
भिक्षु चर्यां प्रवृत्ताः कोवाकार्ये समर्थो
भवति विधिवशाद भाविनीकर्मरेखा ॥४१०॥

युधिष्ठिर, भीम अर्जुनादिक पाञ्चो पाण्डव राजकुमार, शूरवीर, सत्यप्रतिज्ञ, बलवान्, जिसके रक्षक श्री कृष्ण थे

तथापि कृपण के यहां हस्तरूपी पात्र में भिक्षा मांगने गये थे इससे सिद्ध होता है कि विधि विरुद्ध कार्य करने में कौन समर्थ हुआ है ॥४१०॥

बोधयन्ति न या चन्ते भिक्षाद्वारा गृहे गृहे
दियतां दियतां नित्य मदातुफलमिदृशम् ॥४११॥

भिक्षुक भिक्षार्थ घर घर याचना नहीं करते किन्तु वह हम लोगों को उपदेश करते हैं कि आप दान दीजिए क्योंकि दान न देने से हमको यह फल मिला।है जिससे हम घर घर मांगते हैं ॥४११॥

देहितिवचनं श्रुत्वा हृदिस्था: .पंचदेवता:
मुखान्निर्गत्यगच्छन्ति श्री,ह्री,धी, धृतिकोर्तय: ॥४१२॥

"इतना" कहने ही में शरीर में से श्री, लज्जा, बुद्धि धैर्य और कीर्ति यह पांचो देव मुख से निकल कर नष्ट हो जाते है ॥४१२॥

तीक्ष्णधारेणखड्गेन वरंजिह्वाद्विधाकृता:
न तु मानं परित्यज्यदेहदेहितिहिभाषितम् ॥४१३॥

स्वभाव को छोड़ कर हमको दीजिए ऐसा कहने से यही अच्छा है कि तिक्ष्ण धार वाले शस्त्र से जिह्वा को दो टुकड़े ही कर दिया जाय ॥४१३॥

न त्रिषम् विषमोत्याहु ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ।
विषमेकाकिनंहन्तिब्रह्मस्वंपुत्रपौत्रिकम् ॥४१४॥

विष· विष नहीं कहलाता किन्तु ब्रह्मऋण ही विष है विषपान करने वाला स्वयं मरता है किन्तु ब्रह्म ऋणी अपने पुत्र पौत्रादिक का भी नाश करता है ॥४१४॥

मद्यप्यस्यकुतः सत्यंदयामांसाशिनः कुतः ।
कामिन्यश्चकुतोविद्यानिर्धनस्यकुतः सुखम् ॥४१५॥

मद्य पीने वालों में सत्य कहां मांसाहारी में दया कहां, कामी पुरुष में विद्या कहां और निर्धन को सुख कहां ॥४१५॥

दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ।
समुद्रमथनाल्लमेहेरिर्लक्ष्मींहरोविषम् ॥४१६॥

सदैव भाग्य ही फल देता है विद्या और पुरुषार्थ नहीं विष्णु और शंकर को समुद्र मन्थन करने से लक्ष्मी और विष प्राप्त हुआ था ॥४१६॥

सभावान प्रवेष्टव्यावक्तव्यं वासमं जराम् ।
अब्रुवन विब्रुवन वापिनरो भवतिकिल्विषः ॥४१७॥

सभा में जाना नहीं, अगर जाना तो झूठ बोलना नहीं, सत्य जानने पर असत्य बोलने से या मौन रहने से मनुष्य पाप का भागी होता है ॥४१७॥

पिपिलि कार्जितंधांन्यं मक्षिका सचितंमधु ।
लुब्धनेसंचितद्रव्यंसमूल चर्विनश्यति ॥४१८॥

चींटी का प्राप्त किया हुआ अन्न, मक्षिकाओं का संचय किया हुआ मधु, कृपण का धन, और अधिक ज्ञान नहीं ठहर सकता ॥४१८॥

अस्थिरं जीवितं लोके अस्थिरेधनयौवने ।
अस्थिर पुत्रदाराश्चधर्मकिर्तिद्वियं स्थिरंम् ॥४१९॥

इस लोक में जीवन, धन, यौवन. पुत्र. स्त्री आदि स्थिर नहीं केवल धर्म और कीर्ति ही स्थिर है ॥४१९॥

यथाहिग्रस्त मंडूको भोक्तुमिच्छतिकीटकान् ।
तथामृत्युवशालोकासुखमिच्छंतीशाश्वतंम् ॥४२०॥

सांप मेढक को निगलता है, किन्तु मेढक मक्षिका मच्छर की इच्छा रखता है, इसी प्रकार मौत के मुख में फँसे हुए मनुष्य अनेक प्रकार की इच्छा का सेवन करता रहता है ॥४२०॥

अविमुक्त प्रविष्टानां विहारो नैव विद्यते ॥४२१॥

जिसको काशी प्राप्त है उसको दूसरे स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं ॥४२१॥

धर्मःप्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यं चदूरेगत
पृथ्वीमंदफला नृपाश्चकुटिला लौल्यं गताब्राह्मणाः ।

लोकास्त्रिषुरतास्त्रियश्चचपला पुत्राःपितुर्द्वेषिणोः
साधुसीदतीदुर्जनप्रभवतिप्राप्तेकलौयुगे ॥४२२॥

धर्म का दूर होना, तप का नष्ट होना, सत्य दूर जाना पृथ्वी का निरस होना, राजा का दण्ड देना, ब्राह्मण का लोभी होना, लोगोंको स्त्री आसक्त होना. स्त्रियोंकी चपलता पुत्र पिताका द्वेषी साधुका दुःखी होना, दुर्जन को सुख प्राप्त होना, यही कली का प्रभाव हे ॥४२२॥

कलौयुगे कल्मषमानसानां नान्यत्रधर्मःखलु निश्चयेन ।
रामेतिवर्णं द्वयमादरेणसदा पठन् मुक्तिमुपैतिजंतुः ॥४२३॥

कलयुग में मनुष्यों के चित्त पापयुक्त होने के कारण धर्मा-चरण विधि पूर्वक नहीं होता, किन्तु मात्र "राम" यह दो शब्द प्रेम से निरन्तर स्मरण करने से मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान से मुक्ति पाता है ॥ ४२३॥

आशायायेदा सास्ते दामाः सर्वलोकस्य ।
आषायेषांदासी वेषांदासायते लोकः ॥४२४॥

आशा के जो दास हैं, वह सबके दास होते हैं, किन्तु आशा जिसकी दासी है उसके सब दास होते हैं ॥ ४२४ ॥

मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ।
लोभाविष्टोनरोहन्ति स्वामिनं वासहोदरम् ॥४२५॥

लोभ युक्त मनुष्य माता, पिता, पुत्र, भाई, मित्र और स्वामी सबकी हत्या कर देता है ॥ ४२५ ॥

लोभाविष्टोनरोवित्तं वित्ततेन सचापदम् ।
दुग्धंपश्यतिमार्जारोयथानलगुडाहतिम ॥४२६॥

जिस प्रकार बिल्ली दूध का देखती है किन्तु लाठी के मार को नहीं देखती इसी प्रकार लोभी पुरुष धन को ही देखता है दुःख को नही ॥ ४२६ ॥

वयोवृध्धा स्तपोवृध्धायेचबृध्धाबहुश्रुताः ।
सर्वेतेधनवृध्धानां द्वारितिष्ठन्तिकिंकराः ॥४२७॥

वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध सब धनपति के दास हो सकते हैं ॥ ४२७ ॥

उद्यमेनहिसिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहिसिंहस्यसुप्तस्य प्रविशन्ति मुखेगजाः ॥४२८॥

कार्य्य उद्यम से ही सिद्ध होता हैं केवल भावना ही से नहीं होता। जैसे सोये हुये सिंह के मुख में गज अपने आप प्रविष्ट नहीं होते ॥ ४२८ ॥

उद्योगिनः करालम्वं करोतिकमलालया ।
अनुद्योगी करालम्वकरोति कमलाग्रजा ॥४२९॥

लक्ष्मी उद्योगी मनुष्य को ही प्राप्त होती है और आलसी केवल दरिद्रता का ही उपभोग करता है ॥ ४२९ ॥

नयत्नकोटिशतकैरपिदुष्टःसुधीर्भवेत् ।
किमर्दितोऽपिकस्तुर्या लशुनोयाति सौरभम् ॥४३०॥

लाख प्रयत्न करने पर भी दुर्जन सज्जन नहीं हो सकता जैसे लसुन, कस्तूरी के साथ रहने पर भी अपनी दुर्गन्ध नहीं छोड़ता ॥ ४३० ॥

नविनापरवादेनरमतेदुर्जनोजनः काकःसर्वरसान्भुक्ते
विनामेध्यं न तृप्यति ॥ ४३१ ॥

दुर्जन पुरुष, दूसरे की निन्दा में ही सुख प्राप्त करता है, जैसे कौआ सब पदार्थ खाते हुए भी विना विष्ठा के तृप्त नहीं होता ॥ ४३१ ॥

गर्वंनोद्वहतेननिन्दन्तिपरान्नोभाषतेनिष्ठुरं
मोक्तं केनचिद्‌प्रियं च सहते क्रोधं चनालम्बते ।
श्रुत्वाकाव्यमलक्षणं परकृतं संतिष्ठते मूकव ।
दोषांश्छादयतेस्वयंनकुरुतेह्येतत्सतांलक्षणं ॥४३२॥

अभिमानका, दुसरेकी निन्दाका, कठोर वचन बोलनेका अभाव और अप्रिय बचन सहन करने की शक्ति, क्रोधातुर न होना, दुसरे के बनाया हुआ दोष युक्त काव्यों से सन्तुष्ट होना, मौनी की तरह दुसरों के दोष को छुपाना और स्वयं दोष से वचना यह सब सन्त पुरुषों के लक्षण है ॥ ४३२ ॥

घृष्टं घृष्टं पुनरपिपुनश्चन्दनंचारुगन्धं
छिन्नं छिन्नं पुनरपिपुनः स्वादुचैवेक्षुकाण्डम् ।
दग्धं दग्धं पुनरपिपुनः काञ्चनं कान्तवर्णं
न प्राणान्तेप्रकृतिविकृति जायतेचोत्तमानाम् ४३३

जैसे चंदन को जैसे २ घांसोगे अधिक सुगन्ध देता है, गन्ने को कोल्हु में पीसने से उसमें से मीठा रस प्राप्त होता, स्वर्ण को तपाने से उसका रंग और तिखर जाता है वैसे ही महापुरुषों की प्रकृति प्राणान्त तक बदलती नहीं है ॥४३३॥

गुणायन्तेदोषाः सुजनवदनेदुर्जनमुखे
गुणादोषायन्तेतदिदमपि नोविस्मयपदम् ।
महामेघःक्षारंपिबति कुरु तेवारिमधुरं
फणीक्षीरंपित्वावमतिगरलं दुःसहतरम् ॥ ४३४ ॥

सज्जन पुरुष के मुख से दोष भी गुण होता है और दुर्जन के मुख से गुण भी दोष होता है जैसे मेघ क्षार जल पीकर भी मीठा जल बरसाता है। और सर्प दूध पीकर भी जहर उत्पन्न करता है ।।४३४।।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरू जंयावज्जरादरतो ।
यावच्चेंद्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयोनायुषः ॥

आत्मश्रेयसितावदेवविदुषा कार्यः ।
प्रयत्नोमहान्संदिप्तेभवनेप्रकुपखननंमृत्युद्यमःकीदृशः

विद्वान पुरुषों को, शरीर जब तक स्वस्थ्य है अर्थात् एव इन्द्रियां पूर्ण शक्तिमान है, अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिये क्योंकि महान प्रयत्न करके गृह में अग्नि लग जाने से कुंआ खोदना इस तरह से मृत्यु आगया क्या होगा।

परयोनिपतेत्बिन्दुकोटिपूजाविनश्यति ।
जपहानितपोहानिब्रह्महत्या सुपदे पदे ॥ ४३६ ॥

पर स्त्री के संसर्ग से जप तप की हानी, कोटिशः पूजा का नाश और कदम २ पर ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥४३६॥

मद्यांति प्रमदां द्रष्ट्वा सुरांपित्वानमाद्यति ॥४३७॥

मद्यपान से जो नशा चढ़ता है उससे कहीं अधिक का वासना युक्त दृष्टि से स्त्री को देखने से होता है ॥४३७॥

ननित्यं लभतेदुःखंननित्यंलभतेसुखं ।
शरीरमेवायतनं दुःखस्य च सुखस्य च ॥४३८॥

निरन्तर दुःख या सुख नहीं रहता क्यों कि शरीर सुख और दुःख दोनों के रहने का स्थल है ॥४३८॥

रोहते सायकेविंधं वनं परशु नाहतम् ॥
वांचादुरक्तयाविंधं नसंराहैतोवक्षितम् ॥४४०॥

शर का घाव अच्छा हो जा सकता है, कुल्हाड़ी से नष्ट किया उपवन फिर से हरा भरा हो सकता है। किन्तु वचन रूपी बाण से घायल किया हुआ मनुष्य अच्छा नहीं हो सकता ॥ ४४० ॥

सद्योददातियश्चान्नं सदैकाग्रमनानरः ।
नसदुःखानवाप्नोती त्यैवमाह पराशरः ॥ ४४१ ॥

जो मनुष्य एकाग्रता पूर्वक अन्न का दान देता है वह मनुष्य कभी भी दुःखी नहीं होता यह पराशर मुनि का का कथन है ॥४४१॥

स्रवन्तिननिवर्तं तेस्रोतांसिसरितामिव ।
आयुरादायमर्त्यानांतथारात्र्यहनीपुनः ॥ ४४२ ॥

जैसे नदी के प्रवाह में बहता हुआ पानी वापस नहीं लौटता वैसे दिन रात व्यतीत होता मनुष्य की आयु वापस नहीं लौटती ॥४४२॥

मानंहित्वाप्रियोभूयात् क्रोधंहित्वा न शोचति ।
कामंहित्वाथंवान् भूयात् लोभंहित्वासुखीभवेत् ४४४

अभिमान का त्याग करने से कल्याण होता है क्रोध त्याग करने से शोक का त्याग होता है, वाञ्छना का त्याग करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है और लोभ के त्याग से सुख प्राप्त होता है ॥४४४॥

रूपमारोग्यमर्थेश्चधर्मां श्चैवानुशंगीकान् ।
ददातिध्यायतोनित्यमश्वर्वर्गप्रदोहरी ॥ ४४५ ॥

परमात्मा रूप, आरोग्यता, अर्थ, धर्म और लाभ जिसकी इच्छा हो ध्यान करने से देता है, वही सेवा करने से मोक्ष भी देता है ॥४४५॥

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जिवो ब्रह्मैवनापरः ।
इति यस्यदृढाबुद्धिः समुक्तोनात्र संशयः ॥४४७॥

ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है, जीव ही ब्रह्म है—ऐसी जिसकी भावना है, वही मुक्त है इसमें संशय नहीं है ॥४४७॥

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता, शौर्यस्व वाक्संयमो।
ज्ञानस्योपशमः, श्रुतस्य विनयो, वित्तस्यपात्रेव्ययः॥
अक्रोधस्तपसः, क्षमा प्रभवितुधर्मस्य निर्व्याजता।
सर्वेषामपि सर्वकारणभिदं शीलं परं भूषणम् ॥४४८॥

ऐश्वर्य का भूषण नम्रता है, शौर्य का वाक्य संयम, ज्ञान का भूषण संतोष है, सुनने का फल विनय, धन का सुपात्र में दान, तप का फल अक्रोध, शक्ति का क्षमा धर्म का सत्य इन सब में तो सबका कारण है परन्तु सबसे बड़ा फल (भूषण) शील है ॥ ४४८ ॥

नारायणेगणेरुद्रे म्बिकायां भास्करे तथा ।
भेदभावो नकर्त्तव्यः कृतश्चेत ब्रह्मघातीसः ॥४४९॥

नारायण, गण, रुद्र, अम्बिका तथा सूर्य में भेद भाव नहीं करना चाहिये, यदि करेगा तो वह ब्रह्मघाती होगा ॥४४९॥

हरीरूपी महादेवो लिंगरूपो जनार्दनः ।
ईशदप्यंतरंनास्ति भेदकं नरकं व्रजेत् ॥ ४५० ॥

हरी रूपी महादेव हैं लिंग रूपी जनार्दन हैं जो इसमें थोड़ा भेद मानता है वह नरक में जाता है ॥४५०॥

स्नेहमूलानि दुःखानि स्नेह जानि भयानिच ।
शोकहर्षौ तथायासः स्नेहात सर्वप्रमाणजे ॥४५१॥

दुःख का मूल स्नेह है, स्नेह से वृत्ति उपजती है,वह भयानक है, शोक हर्ष प्रयास यह सब स्नेह से ही पैदा होते हैं ॥५१॥

श्र.वणंकीर्तनं विष्णोः स्मरणंपादसेवनं ।
अर्चनं वंदनं दास्यम् सख्यंचाप्यनिवेदनम् ॥४५२॥

श्रीं विष्णु का श्रवण, कीर्तन, अस्मरण, पार सेवन, अर्चन, वन्दन, दासता, सख्य, आत्म निवेदन यह नौ प्रकार की भक्ति है ॥४५२॥

नालेनैवस्थित्वापादेनैकेन कुंचितद् ग्रीवं ।
जनयतिकुमुदभ्रांतोवृध्यबकोबालमत्सानाम् ।४५३।

कमल नाल की तरह एक पाद से खड़ा गर्दन संकुचित कर मत्स्य श्यवक के लिये बगला कमल भ्रान्ति कराता है ॥४५३॥

पश्य लक्ष्मणपंपायां बकः परमधार्मिकः ।
शनैर्मुंचतिपादाग्रं प्राणीनां वधशंकया ॥ ४५४ ॥

हे लक्ष्मण पंपा में बक भी परम धार्मिक है जो अन्य प्राणियों के वध की शंका से पैर भो धीरे २ रखता है ॥४५४॥

सहवासो विजानाति सहवासी विशेष्टितम् ।
बकंकिंवर्ण्यसेराम येनाहं निष्कुलिकृतः ॥ ४५५ ॥

हे राम ! सहवास वाला ही जान सकता है सहवासो ही पहचानता है। आप बगुले की क्या बड़ाई करते हैं उसने तो मेरा कुल ही नष्ट कर दिया ॥५५५॥

क्षमाशस्त्रंकरेयस्यदुर्जनः किंकरिष्यति ।
अतृणेपतित्तो वन्हो स्वयमेवोपशाम्यति ॥ ४५६ ॥

जिसके हाथ में क्षमा रूपी शात्र हो उसका दुर्जन क्या कर सकतां है ? जैसे बिना फूँस के उसर में पड़ी आग स्वयं शान्त हो जाती है ॥५५६॥

स्थान भ्रष्टान शोभन्ते दन्ताकेशानखा नराः ।
इति संचित्यमतीमान् संस्थानंनपरित्यजेत् ।४५७।

दाँत, केश, नख और नर यह स्थान—च्युत शोभित नहीं होते। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को संस्थान नहीं छोड़ना चाहिये ॥५५७॥

कस्त्वंभद्रखलेश्वराहेमितिकिं घोरेवने स्थीयताम् ।
शार्दुलादिभिरेवहिंसपशुभिः खाद्योहमित्याशया ॥
कस्मात् कष्टमिदं त्वया व्यवसितंमद्देह मांसाशिनः।
प्रत्युपन्न नृमांस भक्षणधियः तेघ्नन्तु सर्वान्नरानरान्

हे भद्र तुम कौन हो ? दुष्टेश्वर । इस घोर वन में क्यों पड़े हो शालादि हिंसक पशू जिससे मुझे खालें। आप इतना कष्ट क्यों सहन कर रहे हैं ? मेरे मांस से वह नृमांस के लोभी हो जायंगे जिससे सब मनुष्यों को खा जायंगे। अर्थात् दुष्ट पुरुष अपनी यह सब हानि करके भी दुसरे की थोड़ी हानि चाहता है ॥५५८॥

मानुष्यंवरवंशजन्य विभवो दिर्घायुरारोग्यता ।
सन्मित्रं सुसुतः सती प्रियतमाभक्तिश्चनारायणे ॥
विद्वत्वं सुज्जनत्वं मिन्द्रिय जयः सत्पात्रदानेरतिः ।
तेपुण्येविना त्रयोदशगुणाः संसारी नामदुर्लभाः ४५९

उत्तम वंश में जन्म, विभव, आयु, आरोग्यता अच्छे मित्र, सुपाल संतान सती स्त्री, भगवद्भक्ति, विद्वता, सज्जनता, इन्द्रिय जय, सत्पात्र के दान में प्रीति यह १३ वस्तुएँ मनुष्य को बिना पुण्य नहीं प्राप्त होती ॥४५९॥

अनुकुले विधौदेयं यतः पूरयताहरीः ।
प्रतिकुले विधौदेयं यतः सर्व हरिष्यति ॥४६०॥

भाग्य की अनुकूलता में दान दो क्योंकि हरी पूरा करेंगे। प्रतिकूलता में भी दो क्योंकि वही सब हरण करेंगे ।।४६०।।

चत्वारोधन दाहायधर्माग्नि नृप तस्कराः ।
तेषां ज्येष्ठा वमानेन त्रयः कुर्षति बांधवा ॥४६१॥

धर्म अग्नि राजा, चार यह चारो धन का अप हरण करने वाले हैं इनमें सर्व प्रधान धर्म का जो पालन करता है तो शेष तोनों भाई कुपित हो जाते हैं ॥४६१।।

अभिगम्योत्तमंदानं आहुतं मेवमध्यमं ।
अधमं याच्य मानंस्यात् सेव्यमानंतु निष्फलं ४६२

किसी घर जाकर दान देना उत्तम, बुलाकर देना मध्यम, मांगने पर देना अधम, सेवा करा कर दान देना निष्फल होता है ॥४६२॥

न्यायार्जितधनं चापि विधिवत् यत्प्रदोयते ।
अर्थिभ्यः श्रध्यायुक्तं तद्दानं इतिस्मृतं ॥४६३॥

न्याय पूर्वक अर्जित किया धन यदि विधिवत दिया जाय तो उसे सात्विक दान कहा है ।।४६३।।

गुशब्दस्य अंधकार रूशब्दस्तत् तिरोधिक ।
अंधकारनिरोधित्वात् गुरुरित्यभीधी धीयते ।४६४।

अन्धकार को नष्ट करने से ही गुरू को गुरू कहा गया है ॥४६४॥

राज्येनहि सुखंदुखं संधी विग्रह चिंतया ।
पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यंहिकीदशम् ॥४६५॥

राज्य में सुख नहीं अपितु सन्धि, विग्रह मान आदि की चिन्ता से दुःख ही है, भला जहां पुत्र से भी भय हो वहां सुख कैसा ॥४६५॥

अंभोधीस्थलतां स्थलंजलधितां धूलीलवः शैलतां ।
मेरूमृतकणतां तृणं कुलिशतां वज्रतृण प्रायतां ॥
अग्निशीतलताम् हिमंदहनताम् आयातियस्थेच्छया
लीलादुर्ललिताद्भुत व्यसनीने कालायतस्मैनमः ४६६

जो सागर को मेरु, और मेरु को सागर, पर्वत को राई, राई को पर्वत, तृण को वज्र, वज्र को तृण, अग्नि में शीतलता, बरफ में जलन अर्थात् जैसे इच्छा हो वैसे कर दे ऐसी दुर्ललित लीला में संसक्त काल देव को नमस्कार है ॥४६६॥

अकृष्ट फलमूलानि वनवास रतः सदा ।
कुरूते रहहः श्राध्धऋषिविप्रउच्यते ॥४६७॥

बिना जोते बोये खेत के 'फल मूल खावे और वन में प्रीति करे उसे ब्राह्मण कहते हैं ॥४६७॥

एक हारेण संतुष्टः षट्कर्म निरतः सदा ।
ऋतुकालीमिगामी च सविप्रोद्विजउच्यते ॥४६८॥

एकाहारी हो, सदा षट् कर्म में लगा हो, ऋतुकाल में ही स्त्री संसर्ग करे ऐसा ब्राह्मण ही द्विज कहलाता है ॥४६८॥

लौकिकेरतकर्माणिपशुनां परिपालकः ।
वाणिज्यंकृषि कर्माणिसुविप्रो वैश्यउच्यते ॥४६९॥

लौकिक कार्यों में संलग्न रहे, पशुपालन करता हो, वाणिज्य और कृषि कर्म को करने वाला ब्राह्मण वैश्य कहलाता है ॥४६९॥

लाक्षादि तैल नीलीनां कौसुब मधु सर्पिषम् ।
विक्रियामांस मद्यानाम् सविप्र शूद्रउच्यते ॥४७०॥

लाख, तल, नील, कौस्तुंब, मधु, घी, मांस, मध को बेचने वाला ब्राह्मण शूद्र कहलाता है ॥४७०॥

परकार्य विहंताश्चदांभिकं स्वार्थ साधकः ।
छल द्वेषी मृदुक्रूरोविप्रोमार्जार उच्यते ॥ ४७१ ॥

पर कार्य को नष्ट करने वाला, दांभिक, स्वार्थ साधक, छल और द्वेष करने वाला ब्राह्मण मार्जार कहलाता है ॥४७१॥

बासुदेवा र्च नं हत्वा दुष्टकर्माणि करोतोयः ।
कामधेनुं अतिक्रम्य अर्कक्षीरं सइच्छते ॥४७२॥

वासुदेव की पूजा को छोड़ कर जो दुष्ट कर्म करता है। कामधेनु दुग्ध को छोड़ कर वह आक के दूध की इच्छा करता है ॥ ४७२ ॥

संप्राप्य भारतेजन्म सत्कर्मस्तु परान्मुखः ।
लब्ध्याजन्मामर प्रार्थ्यं अमीशां किमशोभते ।४७३।

भारतवर्ष में जन्म पाकर जिसने सत्कर्मों से मुंह मोड़ा, देवताओं से प्रार्थ्य उस देह की क्या शोभा है ? अतः सत्कर्म करो ॥ ४७३ ॥

सद्विद्या यदिकाचिंता वराकोदरपूरणे ।
शुकोप्यशनमाप्नोतिहरेराम इति ब्रुवन ॥ ४७४ ॥

यदि पास में सद्विद्या है तो बिचारे पेट के भरने की क्या चिंता, क्योंकि तोता भी हरे राम ! कह कर मौज से पिंजरे में बैठा खाता है ॥ ४७४ ॥

अति दूरतां निजस्वरूपम्
गुरू शास्त्रान्न विचारयेत्यदि ।
निकटं गुरूशास्त्र वेदनात् प्रकटं
स्यात् स्वतनौ स्वयं हीतत् ॥ ४७५ ॥

गुरु वाक्य और शास्त्रों का यदि विचार नहीं करता तो स्वरूपता बहुत दूर है। और यदि इन दोनों पर विचार किया तो बहुत समीप है और वह अपने तनमेंही प्रगट हो जायगा ४७५

बधीरयति कर्णं पिवरं वाच
मूकयति नयन मंधयति ।

विकृतयति गात्र्यष्टि
संपत्‌रोगो यमद्भुतो राजन् ॥४७६॥

हे राजन् ! कान से बहरा, वाणी को बन्द एवं आंख से अंधा शरीर से असुन्दर करने वाला यह सम्पत्तिरूपी रोग है ॥४७६॥

एके सत्‌पुरुषाः परार्थ घटकाः
स्वार्थं परित्यज्यते ।
सामान्यस्तुपरार्थ मुद्यम
भृतः स्वार्थाविरोधेनये ॥
ते मी मानुष राक्षसाः
परहितं निघ्नंती स्वार्थाययो ।
येनिघ्नन्ती निरर्थकं
परहितंते के न जानी महे ॥ ४७७ ॥

एक तो वेद सत्पुरुष हैं जो अपना काम छोड़ कर दूसरे का कार्य सिद्ध करते हैं। दूसरे सत्पुरुष वह है जो अपने स्वार्थका नाश न होने देकर दूसरे का काम होने देते हैं, अपने स्वार्थ के लिये जो दूसरे का कार्य नष्ट कराते हैं वह राक्षस प्रकृति के पुरुष कहलाते हैं, और जो निरर्थक दूसरे का कार्य नष्ट करते हैं उन्हें क्या कहें वह भगवान जाने ॥४७७॥

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा नैकशय्यासनोमवेत् ।
बलवान इंद्रिय ग्रामो विद्वांसमथि कर्षंति ॥४७८॥

माता, वहिन और लड़की के संग भी एक खाट पर न बैठे, क्योंकि इन्द्रिय बलवान हैं वह विद्वान को भी खैंच लेती हैं ।४७८।

अहो प्रकृति सादृश्यं श्लेष्मणे दुर्जनस्य च ।
मधुरेकोप मायान्ति कटुके नैव शाम्यति ॥ ४७६ ॥

आश्चर्य की बात है कि कफ की तरह दुर्जन की भी उल्टी प्रकृति है, मधुरता से बढ़ते हैं और कटुता से शान्त होते हैं ।४७९।

ये मज्जन्नि निमजयन्ति चपरान्सो ।
प्रस्तरादुस्तरे वार्धौवीरतरति वानर मटांसीतारयंते ॥

जो खुद डूबते तथा अन्य को डुबाते हैं वहीं कठोर पत्थर राम प्रभाव से तैर कर बानर वीरों को उतारते हैं ॥ ४८० ॥

नजातु कामः कामाना उपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्ण वर्त्मैव भूयएवाभिवर्द्धते ॥ ४८१ ॥

काम के उपभोग से शान्ति नहीं होती जिस प्रकार हवन में हविष्यान्न देने से अग्नि शान्त होने की बजाय बढ़ती है ।।४८१॥

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्र पाणिर्धनापह ।
क्षेत्र दारा यहतचिषडेतेआततायिन ॥ ४८२ ॥

आग लगाने वाला, विष देने वाला शस्त्र लेकर

मरने आने वाला, धन हरण करने वाला दारा को अपहरण करने वांला यह छ: आतताई हैं ।।४८२।।

आत तायी न मायांतं हन्या देवा विचारयन् ।
नाततायी वधे दोषो हन्तुर्भवतिकश्चन ॥४८३॥

आततायी को आते देख कर विना विचारे ही मार देना चाहियें, आततायी को मारने का तो कोई दोष नहीं होता ।।४८३।।

स्मृत्योर्विरोधेन्या यस्तु बलवान व्यवहरत ।
अर्थ शास्त्राच्य बलवत् धर्मशास्त्रमिति स्थिति ४८४

दो स्मृतियों में जहां विरोध दिखाइ दे वहां न्याय क आधार पर काम करना, न्याय में विरोध आवे तो लोक व्यवहार करे, व्यवहार में आवे तो अर्थ शास्त्र के अनुकूल करे अर्थ शास्त्र के विरोध में धर्म शास्त्र को माने ॥४८४॥

कुसङ्गा संग दोषेण साधुर्याति विक्रया ।
एंकरात्रौ प्रसंगेन काष्ट घंटा पिटंवना ॥४८५॥

कुसंग के संग दोष से सज्जन भी विकार को प्राप्त होते हैं, एक रात्रि के प्रसंग दोष से गऊ के गले में काठ का घंटा पड़ा हरिया गऊ भागे नहीं अत: उसके गले में लकड़ी लटका देते हैं ॥४८५॥

त्रिमासैः पूर्यते कार्यं विस्त्रकोट्यैर्नपूर्यते ।
एवं सत्यपि राजेन्द्र लाभात् लोभ प्रवर्तते ॥४८६॥

तीन मास के लिये द्रव्य दिया है, लेकिन तीन करोड़ नहीं दिया। हे राजेन्द्र लाभ होने से लोभ में प्रवृत्ति होती है ॥४८६॥

प्रशांत चित्ताय जितेंद्रियाय
दयार्द्रभावाय गुणान्विताय।
लोकोपकारस्य धृतव्रताय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥४८७॥

प्रशान्त चित्त, जितेन्द्रिय, दयाप्र भाव गुणी, लोकोपकार के लिये व्रत धारण करने वाले पुरुषोत्तम को नमस्कार है ॥४८७॥

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च तथाविश्वास घातक।
त्रयस्ते नरकं याति यावत् चंद्रदिवाकरौ ॥४८८॥

मित्र द्रोही कृतघ्न तथा विश्वासघाती यह तीनों नरक में जाते हैं और जब तक सूर्य चन्द्र रहते हैं तब तक वहीं वास रहता है ॥४८८॥

अहोदुर्जन संसर्गात मान हानी पदे पदे।
पावकोलोह संगेन मुद्गरैरभिहन्यते ॥ ४८९ ॥

आश्चर्य है कि, दुर्जन के संसर्ग से पद पद पर मान हानि होती है लौह के संसर्ग से पावक भी हथौड़ों से पिटती है ॥४८९॥

गवाशनानांस शृणोति वाक्यम्

अहं हिराजन् विदुषां वचांसि।

नचास्य दोषो न च मद्गुणोवा

संसर्ग जादोष गुणा भवन्ति ॥४९०॥

हे राजन् ! यह कसाइयों की बातें सुनता है और मैं ऋषियों की बातें सुनता हूँ, इस बोलने में न इसका दोष न मेरा गुण, संसर्ग से गुण दोष आते हैं ॥४९०॥

परैः प्रोक्ता गुणायस्य निर्गुणोपिगुणींभवेत्।

इन्द्रोपिलघुतांयातिस्वयं प्रख्यापितैं गुणैः ॥४९१॥

जिसका दुसरे वर्णन करते हैं वह निर्गुण भी गुणी हो जाता है। और अपने गुणों का स्वयं वर्णन करने से इन्द्र भी क्षुद्रता को प्राप्त होता है ॥४९१॥

अपेक्षन्ते न च स्नेहं न पात्रं न दशान्तरं।

सदालोकहितासक्ता यथारत्नदीपोत्तमाः ॥४९२॥

जिस प्रकार उत्तम रत्नरूपी दिवा स्नेह पात्र रवि दशान्तर को न देखता हुआ भी उजाला ही देता है ठीक उसी प्रकार साधु भी, स्नेहुपात्र आदि का ध्यान रखते हुये सर्वदा लोक कल्याण में लगा रहता है ॥ ४९२ ॥

तृतीय भाग।

❋ वाण प्रस्थ-कपिल गीता ❋

५।२१

अहं सर्वेंषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा।
तमवज्ञायमांमर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडंबनम् ॥ २१ ॥

सब जीव मात्र में भूतात्मा मैं सदा स्थित रहता हूँ। मेरी अवज्ञा करके जो पुरुष केवल मूर्ति पूजा करता है वह केवल विडम्बना मात्र है ॥ २१ ॥

योमां सर्वेंषु भूतेषु संतमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोतिसः ॥२२॥

सबके शरीर में व्यापक ईश्वर को छोड़ कर जो पुरुष पूजा करता है वह मूर्खतावश राख में हवन करता है ॥ २२ ॥

द्विषतः परकायेमां मानोनोभिन्न दर्शिनः।
भू तेषुबद्ध वैरस्य न मनः शांति मृच्छति ॥२३॥

सब प्राणियों की देह में विराजमान मुझ परमेश्वर से जो द्वेष करता है ऐसे उन प्राणियों का मन कभी शान्त नहीं होता २३

ज्ञान भण्डार

भाग ३

मनुस्मृति वानप्रस्थ प्रकरण

एवं ग्रहाश्रमेस्थित्वा विधि वत्स्नातको द्विज।
वने वसेत् नियतो यथा वद्विजितेंद्रियः ॥ १ ॥

इस प्रकार स्नातक ब्राह्मण विधि पूर्वक घर में रह कर जितेन्द्रिय हो बनवास ले ॥ १ ॥

ग्रहस्थ स्तयदापश्ये द्वलिपलित मात्मनः।
अपत्य स्यैव चापत्ये तदारण्यं श्रमा श्रयेत् ॥२॥

गृहस्थ जब सफेद बाल आते देखें तो पुत्र पौत्रादिकों को घर बार सौंप अरण्य में चले जांय ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्य महार सर्व चैवपरिच्छदम्।
पुत्रेषुभार्यां निक्षिप्य वनंगच्छे त्सैह्यवा ॥ ३ ॥

ग्रमाय की सर्व वस्तुओं का त्याग कर और स्त्री को पुत्रों को सौंप वन को चले जांय अथवा उसे भी साथ ले जांय।३

अग्निहोत्रं समादाय गृह्य चाग्नि परिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसे नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

अग्नि होत्र की सामग्री लेकर बन में चला जाय एवं नियम पूर्वक जितेन्द्रिय होकर बन को चले जांय ॥ ४ ॥

वसीतं चर्मचिरंवासायं स्नात्वा त्रगेतथा ।
जटाश्चविभृयानित्यंश्मश्रुलोमनखानिच ॥ ५ ॥

मृग चर्म पहिरे अथवा टाट पहिरे दोनों समय स्नान करें। जटा, नख, दाढ़ी, नखादि न कटावें ॥ ५ ॥

अग्नि नात्मनि वैतान्स मारोप्ययथाविधि ।
अनग्नि रनिकेतः स्यान्मुनि मूल फलाशनः ॥ ६ ॥

अग्नि का अपनी आत्मा में आरोप कर अग्नि से रहित हो मुनि वेष धर फलाहार कर रहे ॥ ६ ॥

अप्रयन्तत सुखार्थिषु ब्रह्मचारी धराशयः ।
शरणेश्वमभयश्चैव वृक्षमूल निकेतनः ॥७॥

सुख के लिये प्रयत्न न करे ब्रह्मचारी रहे। पृथ्वी पर शयन करे, ईश्वर शरण में जाकर निर्भय बृक्षमूल में रहे ॥ ७ ॥

तापसेष्वे विप्रेषु यात्रिकं भैक्ष्य माहरेत् ।
ग्रहमेधिषु चान्येषु द्विजेषुवनवासिषु ॥
ग्रामादाहृत्य वाष्नियात् दष्टोग्रासान्वने वसन् ।
प्रतिगृहेपुटे नैवपाशिनाशक तेनवा ॥ ८ ॥

बन में तपस्वी ब्राह्मणों के यहां से भिक्षा ले आवे अन्य

बनवासी द्विजों के घर से तथा ग्राम से भिक्षा लाकर भी ८ ग्रास करे ॥ ८ ॥

एताश्चान्याश्चसेवेत दीक्षाविप्रोवने वसन् ।
विविधाश्चोपनिषदि रात्मसंसिध्ये श्रुति ॥ ९ ॥

यह तथा अन्य दीक्षा धारण कर मोक्ष के लिये पृथक् २ उपनिषदों तथा श्रुतियों को पढ़े ॥ ९ ॥

वनेषु विहृत्येषु तृतियं भाग मायुषः ।
चतुर्थ मायुषोभागं त्यक्त्वा संगान्परिब्रजेत् ॥१०॥

इस प्रकार आयु का तीसरा भाग वानप्रस्थ आश्रम में बिता कर पीछे अग्नि होत्र और स्त्री को छोड़ कर संन्यास धारण करे ॥ १० ॥

अधित्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चो त्पाद्य धर्मतः ।
ऋणानि त्रिणपा कृत्य मनोमोक्षे निवेशयेत् ॥११॥

विधिवत् वेदाध्ययन कर, धर्म पूर्वक पुत्रादि उत्पन्न कर, देव ऋषि और पितृ ऋण से मुक्त हो मोक्ष की अभिलाषा करे ॥११॥

इष्टाचशक्तितोयज्ञै मनोमोक्षेनिवेशयेत् ।
अनताकृतमोक्षंत सेवमान ब्रजत्यधः ॥ १२ ॥

यथा शक्ति यज्ञ करके ही मोक्ष मार्ग का अनुसरण करे अन्यथा नरकगामी होता है ॥ १२ ॥

वक्तं चान्नं समश्नया दिवा वाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालकावो स्यात् स्यादप्यष्टकालकाः ॥१३॥

संन्यासि रात्रि या दिन में यथा शक्ति भोजन करे चतुर्थ प्रहर में या षष्ठम प्रहर में ॥ १३ ॥

यद्भक्ष्यंस्यात्ततादेद्यात्बलिंभिक्षाचिशक्तितः ।
अमूलफलमित्र भिर रर्चियद् आश्रमागतात् ॥१४॥

जो स्वयं भोजन करे अथवा मूल फल कन्द आदि से आश्रम पर आये हुये अतिथि का सत्कार अवश्य करे ॥ १४ ॥

आश्रमाद् श्रमंगत्वाहृत होमोजितेंद्रियः ।
भिक्षावली परिश्रांतः प्रव्रजम्र् प्रेत्यवर्धते ॥१५॥

जब होम, भिक्षा बलि आदि से परिश्रान्त हो जाय तो एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाकर शान्ति लाभ करे ॥ १५ ॥

॥ इति वान प्रस्थाश्रम ॥

अभ्यासने वेमानाम् आचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युविर्प्रांजिघांसति ॥१६॥

वेदों के न पढ़ने से आचार त्याग तथा आलस्य और अन्य दोष से मृत्यु ब्राह्मण का नाश करता है ॥ १६ ॥

वेदस्मृतिसदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतत् चतुर्विधंमाहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम् ॥१७॥

युद्ध में हिंसा का दोष नहीं ॥ १७ ॥

एतद्वैतनक्षरंगार्गिब्राह्मणा अभिवदंति ।

अस्थूलमनण्व ह्रस्व मदीघ मलोहिं मस्नहे ॥१८॥

वेद, स्मृति, सदाचार और स्वात्म प्रिय कर्म यह धर्म के साक्षात चार लक्षण हैं ॥ १८ ॥

यच्छाय मनसोवाय्व नाकाश मसंग परसेमगंध ।

मचक्षुमश्रोत्र मवगमनोऽतेजस्जकमप्राणप्रमुखममात्रं

स्तएयवा अक्षरस्य प्रशासनेगार्गिद्यावा पृथिव्योविधृत ॥१६॥

हे गार्गि ! ब्राह्मण जिसकी पूजा करता है वह अविनाशी ब्रह्म है। वह न ह्रस्व न अणु न दीर्घ लोहित, अस्नेह, अगंध, अचक्षु, बिना माता, वाणी, तेज, मन आदि से रहित प्राण प्रमुख मात्र है ॥ १९ ॥

पुंखानुंपुंखविषये अणतत्परोऽपि-

ब्रह्माव लोक नधियनजहातियोगी।

संगीत नृत्यलवसंगताऽपि मौलीस्थकुंभ

परिक्षण धीन टीवकारः ॥२०॥

हे गार्गि ! इसी अविनाशी पुरुष के शासन से स्वर्ग और पृथ्वी स्थित है ॥ २० ॥

यस्तुविज्ञानवानभवतिसमनस्कः सदाशुचि ।
सतुतत्पदमाप्नोति यस्मात् भूयोन जायते ॥२१॥

सांसारिक बहिर विषय भोगों को देखते हुये भी योगी ब्रह्म भाव का त्याग नहीं करता, जैसे सगीत, ताल, नृत्य लय का ध्यान रखते हुये भी नाचने वाली शिर के घड़े की रक्षा का ध्यान रखती है ॥ २१ ॥

शान्तोदान्त सुपरत स्तितिक्षुः समहितो ।
भूत्वाआत्मन्यत्रोत्मानं पश्यति ॥ २२ ॥

जो ज्ञानवान शुद्ध चित्त तथा स्ववशेन्द्रिय है वह उस पद को प्राप्त करता है जहां से फिर पैदा नहीं होता ॥ २२ ॥

संसारिक सुखसक्तं ब्रह्मज्ञस्मितिवादिनम् ।
कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं नत्मजदेन्यजंयया ॥३२॥

शान्त, कान्त और तितिक्ष। आरत से युक्त पुरुष आत्मा में ही परमात्मा को देखता है ॥ २३ ॥

सत्यंज्ञान मनन्तब्रह्मयोवेदंनिहितंगुहायां परमेव्यो ।
मनन्नूसोश्नुते सर्वात्कामान्तुसहब्रह्मणा विपश्चिता ॥२४॥

सांसारिक सुखों में आसक्त 'मैं ब्रह्मज्ञ हूँ' ऐसा कहने वाले स्वयं भ्रष्ट को त्याग दें ॥ २४ ॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूयगुवाशयः ।
सर्वंकोपिसमभगवान तस्मात्सर्वंनतः शिवा ॥२५॥

जो सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप और अनन्त स्वरूप ब्रह्म को अपनी आत्मा के परमाकाश में देखता है वह ब्रह्माकार होकर सर्व सुख भोग करता है ॥ २५ ॥

नैनमूर्ध्वं नतिर्यंञ्च ननध्येपरिजग्रमत् ।
नतस्यप्रतिमाअस्तियस्यनाममहद्यशः ॥२६॥

उसका मूल शिर और ग्रीवां सर्वत्र है सर्व प्राणियों की आत्मा में उसकी जगह है। वह सर्व व्यापक होने से सर्वत्र पहुंचता है और वह मंगलमय हैं ॥ २६ ॥

वस्तुविज्ञानवानभवतियुक्तेनयनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणिसवयानिसदस्वाइव सारथे ॥२७॥

उसे ऊपर नीचे टेढ़े से कोई पकड़ नही सकता इसलिये उसकी प्रतिमा नहीं और उसका नाप यह अंश है ॥ २७ ॥

अमृतं चैव अगत्यश्च द्वयंदेहेप्रतिष्ठितम् ।
मृत्युरायपद्यते मोहात्सत्येनापद्यतमृतम् ॥२८॥

जो ज्ञानवान अपने मन को वश में रखता है वह सार्थी की तरह अपनी इन्द्री रूपी घोड़ों को अपने कब्जे में रखता है ॥२८॥

पठन्तुशास्त्राणियजन्तुदेवान्कुर्वन्तुकर्माणि भजन्तुदेवताः ।
आत्मैकबोधेनविनापिमुक्तिर्नसिध्यतिब्रह्मशतान्तरेऽपि॥२९॥

शास्त्र पढ़ो, यज्ञ करो, शुभकर्म करो, देवताओं की सेवा करो, परन्तु आत्मबोध विना सैकड़ों युग में भी मुक्ति न मिलेगी ॥ २९ ॥

ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः ।
इतियस्यदृढ़ा बुद्धिसमुक्तोनात्र संशयः ॥३०॥

ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है जीव ब्रह्म के भिन्न नहीं है ऐसा जिसका दृढ़ निश्चय है वह मुक्त ही है इसमें संशय नहीं ॥ ३० ॥

कुशला ब्रह्मवार्त्तायाम् वृत्ति हीनाः सुरागिणः ।
कलौ वदोन्तिनीभांति फाल्गुने बालकाइव ॥ ३१ ॥

ब्रह्म वार्ता में कुशल वृत्ति हीन रागी ऐसे अनेक वेदान्ती कलियुग में है जैसे पत्र गण में बालक कहते हैं ॥ ३१ ॥

आत्मा प्रकाशकः स्वेच्छो देहस्तामसमुच्यतो ।
तयोरैक्यं प्रयश्यंति किम ज्ञानं प्रपश्यते ॥ ३२ ॥

आत्मा स्वेच्छ प्रकाश स्वरूप हैं और शरीर तामस है उनको एक रूप से देखने वाला क्या अज्ञान नहीं देखता अपितु वह अज्ञानी ही है ॥३२॥

नमोऽचो नभसः पृष्ठेनपाताल भूतले ।
अज्ञान हृदय ग्रंथी नाशो मोक्षइति स्मृतः ॥ ३३॥

आकाश, पाताल या पृथ्वी में नहीं है अपितु हृदय से अज्ञा का नाश होना ही मोक्ष है ॥ ३३ ॥

मृदांभार सहस्त्रेषु कोटिकुंभ जलेस्तथा ।
कृत शौच अशुध्यात्मा स चांडाल इति स्मृतः ॥ ३४

हजारों भार मिट्टी तथा करोड़ों घड़े जल से से शुद्ध पर भी अशुद्ध मन वाला चाण्डाल के तुल्य है ॥३४॥

यथा पूर्वं माया परिकलित दृष्टि निज सुखं ।
स्वयै भातं अपि न परिपश्यति सहजम् ॥
तथेदानीज्ञानां जन विमल चक्षुजंगदिदं ।
चिदा काशेपश्यन्नपि न परिपश्यामिपितथा ॥३५

जिस प्रकार पूर्व माया के प्रभाव से आत्म सुख प्राप्त होता लेकिन जब उसने ज्ञानाञ्जन आंजा और चिदा को देखा तो अज्ञान नष्ट हुवा ॥३५॥

अंतस्थ तिमिर नाशायशब्द बोध निरथंकम् ॥ ३६

अन्तस्थ अन्धकार के नाश के लिये शब्द बोध निर है ॥ ३६ ॥

अमुष्य संसार नरोरबोध मूलस्य नोन्मूल विनाशनाय ।
विश्वेश्वराराधन बीजजाता तत्वाय बोधाद्नपरोभ्युपाय॥३७॥

इस संसार रूपी वृक्ष को नष्ट करने के लिये विश्वेश्वर के आराधन के अतिरिक्त कोई उपाय नही ॥३७॥

स्नानं तेन समस्त तीथ सलिले सर्वापिदत्तावनी ।
यज्ञानां च सहस्त्रमिष्टमखिला देवाश्च संपूजिता ॥
संसाराच्च समुधना स्वपितर स्त्रैलोक्यपूज्योप्यसौ ।
यस्य ब्रह्मविचारणेक्षण मपिस्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥३८॥

उसने सर्व तिर्थों में स्नान कर लिया. सम्पूर्ण पृथ्वी दान मे देदी, हजारों यज्ञ कर लिये समस्त देव पूजन कर लिया, संसार सागर में अपने पितरों का उद्धार कर लिया. वह त्रैलोक्य पूज्य हो गया जिसका मन एक क्षण भी ब्रह्म में विचार स्थिर हो गया ॥३८॥

सम्यग्दर्शन संपन्नं कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहो नस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ३९ ॥

जिसने अच्छी प्रकार दर्शन कर लिया वह कर्म बन्धन में नही फंसता जो दर्शन विहीन हैं वह संसार बन्धन में पड़ने है ॥ ३९ ॥

तंदुर्दर्श गूढ मनु प्रविष्टं गुहाहितं गव्हरेष्टं पुराणं।
अध्यात्म योगाधि गमेनदेव मत्वाधीरो हर्ष शोकं जहाति॥४०

जिसका दर्शन दुर्धर और आप्रत्यक्ष है, वह गुहा में स्थि
आच्छादित है। उसका अध्यात्म तत्व से प्रत्यक्ष होता है. उ
देव को जान कर धीर पुरुष हर्ष शोक को तज देता है ॥४०॥

पठका पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतका।
सर्वेव्यसनीनोमूढाः यः क्रियावान सपंडितः ॥४१

पढ़ने वाला पाठ करने वाला तथा अन्य भी शास्त्र चिंत
सब कव्यसती और मूढ़ हैं लेकिन जो क्रियावान हैं वही पण्डि
है ॥ ४१ ॥

सांग श्रुतौ पुराणकंठो वेदान्त तर्क अपियोग मिमांसा।
ज्ञातास्मते निखिल संशया शैलवज्र।
स्वात्माव बोध विफलोपाकदर्वि ॥ ४२ ॥

सम्पूर्ण पुराण वेद कंठ हो पुराण न्याय मीमांसा आदि
सबको जानने वाला यदि आत्मज्ञ नहीं तो कड़न्द्री के सदृ
निष्फल है ॥४२॥

सुचिंतितं औषधमातुराणां न नाम मात्रेण करोत्यरोगम्॥४३

उत्तम औषध भी रोगी को नाम जप से ही निरोग नहीं
करती ॥४३॥

अविदित परमानन्दो वदति जनो विषमेव रमणीयं ।
तिल तैल मेव मृष्टं येनन दृष्टं घृतं क्वापि ॥ ४४ ॥

जिसने परमानन्द को नहीं जाना वह विषयों में रमण करता है क्यों कि जिसने घृत नहीं देखा वह तेल की ही प्रशंसा करता है ॥४४॥

मीन स्नानरताः फणीयवनभुक् मेषस्तु पर्णाशनाः ।
नीराशः खलुयाचका प्रति दिनं शेते बिले मूषका ॥
भस्मोन्धुल न तत्परो ननुखरोध्या नाधिरुढः बकः ।
सर्वे तेन प्रयांति मोक्ष पदवीं भक्ति प्रधानं तपः ॥ ४५ ॥

मीन निरन्तर स्नान में रहता है, सर्प हवा तथा मेढ़ा पत्ते खाता है। याचक प्रतिदिन निराश होता है. चूहा बिल में सोता है, खर सर्वदा भष्म (धूल) में मस्त रहता है बक सर्वदा ध्यान में तात्पर रहता है फिर भी मुक्त नहीं होता इसलिये भक्ति प्रधान तप ही मोक्षका कारण है ॥४५॥

अत्यन्त मलीनो देह देही चात्यन्त निर्मलः ।
उभयोर्यन्तरं ज्ञात्वा कस्यशौचं विधियते ॥ ४६ ॥

देह अत्यन्त मलिन है देही अत्यन्त निर्मलहै दोनों का अन्तर जान कर कहां किसका शौच करना चाहिये ॥४६॥

मुक्तिःमिच्छसि चेतात विषयान विषवत्यज ।
क्षमार्जवदयातोष सत्यं पीयुष वद्भज ॥ ४७ ॥

" हे भाई यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष की तरह त्याग करो, तथा क्षमा, आर्जव, और सन्तोष का अमृत की तरह सेवन करो ॥४७॥

ज्ञानामृतेनतृप्तस्य कृतकृत्यस्ययोगिनः ।
नैवास्तिकिंचित्कर्तव्य मस्तिचेन्न स तत्व वित् ॥ ४८ ।

ज्ञानामृत से तृप्त कृतकृत्य योगी का कुछ कर्तव्य नहीं क्यों कि वह तत्ववित है ॥४८॥

निः संकल्पो यथाप्राप्त — व्यवहार परोभव ।
क्षये संकल्प जालस्य जीवो ब्रह्मत्व माप्नुयात् ॥४९॥

निसंकल्प होकर जो स्वं ये प्राप्त भोगों को भोगे जाल के क्षीण होने से वह जीव संकल्प ब्रह्म हो जाता है ॥४९॥

यदा नाहं तदा मोक्षोय दाहं वंधनं तदा ॥ ५० ॥

जहां तक मैं हूँ वहां तक बन्धन है जहां मैं नहीं वहां मोक्ष है ॥५०॥

न मोक्षो नत्रेसः पृष्ठेपाताले चान्यभूतले ।
संसयस्यक्षये चित्तक्षयो मोक्ष इतिस्मृतः ॥ ५१ ॥

मोक्ष आकाश पाताल या पृथ्वी पर नहीं अपितु चित्तका संयश क्षीण होना ही मोक्ष है ॥५१॥

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वा समुपस्थितं ।

अविह्वलमनो स्वस्थो मुक्त एव महाशयः ॥ ५२ ॥

स्त्री अथवा काल को देख कर जिसका मन चलायमान नहीं होता वह ज्ञानी मुमुक्षु है अर्थात् वह सर्वत्र एकाकार दृष्टि रखता है ॥५२॥

परिग्रहेषु वैराग्यं प्राया मूढस्य दृश्यते ।

देहे विगलिताशस्य क्वरागः क्वविरागता: ॥ ५३ ॥

प्राय मूढ़ पुरुषों को परिग्रह में वैराग्य दिखायी देता है। शरीरादि "स्व" में नहीं, लेकिन जिसका देहाध्यास नष्ट हो गया उसके लिये क्या त्याग और क्या विरागता सर्वत्र तदाकार देखता है ॥ ५३ ॥

नाभि नंदति मरणं नाभिनंदेति जीवीतम् ।

कालमेव प्रतितेत, निंदर्शमृतकोवे ।। ५४ ॥

न मरने की इच्छा करे न जीने की काल का अवलोकन करता रहे कि किस समय क्या होता है ॥५४॥

अधमा प्रतिमा पूजा जयहोमाश्च मध्यम ।

उत्तमा मानसी पूजा सोऽहं पूजा महात्मानाम् ॥ ५५ ॥

मानसी पूजा उत्तम है, और महात्माओं की पूजा तो सोऽहं है ॥ ५५ ॥

देहोदेवालया प्रोक्ता जीवोदेवसदा शिव ।
त्यजेत् अज्ञान निर्माल्यम् सोहं भावेन पूजयेत् ॥५६॥

देह का देवालय और जीवको सदाशिव देव कहा है । अज्ञान निर्माल्य को छोड़ सोऽहं भाव से उसे पूजना चाहिये ॥५६॥

अभेद दर्शनं ज्ञानं ध्यान निर्विशयं मनः ।
स्नानं मनामल त्यागं शौच इन्द्रिय निग्रहः ॥ ५७ ॥

अभेद दर्शन ही ज्ञान हैं, मन का निर्विषय होना ही ध्यान है मन का मैल त्याग स्नान और इन्द्रिय निग्रह ही शौच हैं ॥५७॥

ब्रह्मानंदं पिवेत भैक्ष्यं आहारे देह रक्षणे ।
इत्येवमाचरेत् विद्वान् स एव मुक्ति माप्नुयात् ॥५८॥

ब्रह्मानन्द का पान और भक्षण करे एवं देह रक्षण के लिये आहार करें, बुद्धिमान व्यक्ति इतना ही करे तो मुक्ति प्राप्त हो ॥ ५८ ॥

ना पुत्राया शिष्यावै पुनः ।
योवाए तदक्षरं गार्ग्य विदित्वा
स्माल्लोकान्प्रेति सकृपणः ॥ ५६ ॥

शिष्य यदि भाव रहित हो तो उसे ब्रह्म विद्या का उपदेश न दे हे गार्गि ! जो इस लोक से आत्मा को बिना जाने जाता है वह कृपण है ॥ ५९ ॥

तरति शोकं आत्मवित् ॥६०॥

आत्मज्ञ पुरुष ही शोक से परे है ॥६०॥

निरोग उपविष्टोवा रुग्णो वा विलुठन्भुवि ॥
मूर्छितोवा त्यजत्येष ।
प्राणान्भ्रान्ति न सर्वथा ॥६१॥

ब्रह्मवेत्ता निरोग हो अथवा रोग युक्त हो भूमि पर पड़ा हो अथवा मूर्छित हो प्राणों का त्याग कर दे तो भी वह ब्रह्म वेत्ता ही वहां अविधा नहीं चमकता ॥६१॥

यावन्नैव प्रविचरति चरत् मारुतोमध्यमार्गे ।
यावत् विंदुर्न भवति दृढ प्राणवतः प्रबंधात् ॥
यावध्याते सहज सदृसं जायतेनैव तत्वम् ।
तावत् ज्ञानं वदति तदिदं दंभ मिथ्याप्रलाप॥६२॥

जब तक चलता वायु मध्य मार्ग (सुषुम्ना) में प्रवेश नहीं करता, तब तक विन्दु प्राण वायु ब्रह्म रंध्र में स्थिर नहीं होता। जबतक ध्यान में प्रकाशमय तत्त्व प्रत्यक्ष नहीं होता तब तक यदि ज्ञान प्राप्ति कही जाती है तो वह प्रलाप मात्र है ॥६२॥

द्रव्यस्यागेतु कर्माणि भोगत्यागे व्रतान्यपि ।
सुख स्यागे तपो योगो सर्व त्यागी समापना॥६३॥

द्रव्य त्यागने पर कर्म भोग त्यागने से व्रत, सर्व प्रकार का सुख त्याग ने से तप और तत्व योग प्राप्ति होती है ॥६३॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो नमेधया न बहुना श्रुतेन।
त्यागे नेकेनामृतत्व मानशु प्राप्त (कठोपनिषद्)॥६४॥

यह आत्मा वालो मेधा या बहु श्रुत लभ्य नहीं यह तो सिर्फ एक त्याग से ही प्राप्त होती है ॥६४॥

यो वैभूमानत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति ॥६५॥

ब्रह्म दशा में ही सुख है अल्प में नहीं ॥६५॥

अविज्ञा तमविजानतां विज्ञातमयिजानतां॥६६॥

जो कुछ नहीं जानता वह उसे जानता है जो सब कुछ जानता है व उस नहीं जानता ॥६६।

तस्ये तपोदमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः ।
सर्वाङ्गा निसत्यमायतनं ॥ ६७ ॥

उसकी तप, दम, कर्म ये प्रतिष्ठा है वेदों के सर्वांग और सत्य उसके घर हैं ॥६७॥

यद हरये विरजेत्तद हरेव प्रव्रजेत् ॥६८॥

जिस दिन पक्का वैराग्य हो। उसी दिन गृह त्याग कर दे ॥६८॥

इह चेद वेदीदथ सत्यमस्ती।
न चे दिहा वेदोन्महति विनष्टि ॥ ६९ ॥

यदि इस शरीरर में ब्रह्मप्राप्ति हुई तो ठीक नहीं तो अमूल्य रत्न खोया समझो ॥६९॥

असतो माद्सग मय तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय "(श्रुति) ॥ ७० ॥

असत्य में से सत्य प्राप्त कर, अन्धकार त्याग प्रकाश में आओ मृत्यु से अमृत प्राप्त कर ॥७०॥

पूर्वं निरतरंभ्यस्त ब्रह्मै वास्मितिवासना।
हरत्य विद्या विक्षेपान् रोगानिव रसायनम् ७१

अहं ब्रह्मास्मि' इस निरन्तर-अभ्यास रूपी वासना रसायन से सर्व भाव रोगों को नष्ट होजा हैं ॥७१॥

देहास्म बुद्धिजं पापं न तद् गोवध कोटिभिः
आस्माहं बुद्धिजं पुण्यं न भतो न भविष्यति॥७२॥

मैं देह हूं ऐसी बुद्धि करना करोड़ों गो वध के पाप के समान है। मैं आत्मा हूं ऐसी बुद्धि के समान और कोई पुण्य नहीं॥७२॥

अमन्य मानः त्त्रिय कश्चिद्न्य ।
नाधोयतेनाण इवास्य व्याधः ॥
क्रोधाल्लोभान्मोह भयान्तरात्मा ।
सवै मृत्युस्त्यच्छरोरे यएषाः ॥ ७३ ॥

कोई अविवेकी परमात्मा सम्बन्धी अध्यात्म शास्त्र को नहीं जानता और षडङ्ग वेद को जानता तो उसे देहाध्यास निरर्थक है।क्रोध लोभ मोह यह तुम्हार शरीर में मृत्यु है ॥७३॥

असं मानात्तपो संमानात्तुतपः त्त्ययः ।
अर्चित पूजितो विप्रोदुग्धा गौरीवसोदति ॥७४॥

सम्मान से तप बृद्धि और सम्मान से तप त्त्य होता है, इसलिये अर्चन पूंजन को जो राग पुर्वका ग्रहण करता है वह पुरुष सम्पूर्ण दुही हुई गउ की तरह दुःखी होता है ॥७४॥

भोगेनत्वितरेक्षययित्वा संपद्यते ॥ ७५ ॥

भोग के पाप पुण्य को क्षय करके परमात्म स्वरूप में अनेक प्राप्त होता है ॥७५॥

सन्यांक्षितौ किंकशो पूत्रद्या सैषह्वि ।
स्वसिद्धे ह्युप वर्हणैः किं ॥
सत्यं ज्ञलौ किं पुरुधा न्नया ।
स्यादिक् वल् कलादै सति किंदुकुलै ॥ ७६ ॥

जमीन रूपी खाट रहने से खाट की क्या जरूरत। हाथ रूप तकिया रहने से तकिया की क्या जरूरत, हाथ रूपी पात्र रहने से जलपात्र की क्या जरूरत वल्कल रूपी वस्त्र रहने से वस्त्र की क्या अपेक्षा करना ॥७६॥

चिराणि किं पथिनं सन्ति दिशन्ति।
भिक्षां नैवां घृपापर भृतः सरिताप्यशुष्यन् ॥
रुद्धां गुहाक्किमजितऽवतिनोप सन्नान।
कस्मात् भजन्ति कवभोधन दुर्मदान्धान् ॥७७॥

क्या रास्ते में पड़े फटे पुराने कपड़े नहीं ? क्या वृक्षों ने भिक्षा देनी छोड़ दी। क्या नदियों में अमृत रूपी जल सूख गया है क्या गुफाऐं बन्द हो गई फिर यति धनाढ्य व्यक्तियों की सेवा क्यों करते हैं ॥७७॥

कर्मणा तेन तेनैषा विस्तारं मनुगच्छति।
दोषा विष वेगस्य यत् क्षोर विस्तरायते ॥७८॥

लक्ष्मी दैविक कर्म यज्ञादि से नहीं बढ़ती, अपितु घूत चोरी आदि दोषों से लक्ष्मी विस्तृत होती. है अर्थात लक्ष्मी पाप कराती है ॥ ७८ ॥

एतवैन मात्मानं विदित्वा ब्राह्मणा।
पुत्रेषणा, याश्चवित्तषण याश्च लोकेषणा ॥

याश्चव्युत्थायाथों भिक्षाचर्यं चर्यं चरंति ॥ ७९ ॥

इस आत्मा को जानकर विद्वान, पुत्र, धन, लोक की इच्छा से उत्थान पाकर भित्ता वृत्ति से रहते हैं ॥ ७९ ॥

विरस्ता तिशया नंदं वैष्णवं परमं पदं ।
पुनरा वृत्ति रहितं कैवल्यं प्रति पद्यते ॥ ८० ॥

निरति शया नंद वैष्ण पदको प्राप्त कर पुनरावृत्ति रहित कैवल्यधाम को प्राप्त करता है ॥ ८० ॥

कृध्यं तमं प्रतिकृध्येदा कृष्टः कुशलं वदेत् ।
अतिवादां स्तितिक्षेत्त तु वमन्येत कंचनः ॥८१॥

कोई क्रोध करे तो उसकी साथ क्रोध नहीं करे, कोई निन्दा करे तो उससे कहो तुम्हारा कुशल हो, अत्यन्त बोले तो त्तमा एवं किसी का उपकार नहीं करना ॥ ८१ ॥

वन्नसन्तं न चासन्तं ना श्रुतं नाबहु ।
श्रुतं नसुकृतं नदुर्वृत्तां वदेकेश्चित्सवैयति ॥८२॥

जिसको न सदाचारी न दुराचारी न अधम न उत्तम कुछ भी नहीं गिनाता ॥ ८२ ॥

नमेवैकं जानथ आत्मा म मन्या वाचो विमुंचथ ।
नानुध्यायंद् बहुशब्दात् वाचोवि विग्लापं हितम् ८३

जो आत्मा को जानता है और कुछ वाणी से नहीं कहता

क्योंकि वाज़ी काम रूर है। इसी लिये वह अपना सिद्धान्त औरों के आगे नहीं रखता ॥ ८३ ॥

आत्मानं चेद्विजानी यादयमस्मिति पुरुषः।
किमिच्छिन् कस्य कामापशरीरमनु संज्वरेत् ८४

मैं 'आत्मा हूँ" इस प्रकार जो आत्मा को जानता है वह और न किसी की इच्छा करता और न किसी की कामना से शरीर को सुखाता है ॥ ८४ ॥

अंतः शीतलतायातु लब्धायां शीतलं जगत्।
अंतस्तृष्णो पतप्तानां दाव दाह मिदं जगत्॥८५

आन्तरिक शीतलता जिसने प्राप्त करली उसके लिये ससार शान्त है, जिसके अन्तः करण में उष्णता है उसके लिये संसार भी तप्त है ॥ ८५ ॥

दर्शना दर्शने हित्वा स्वयं केवल रुपतः।
यस्तिष्ठति सतु ब्रह्मन् ब्रह्मेव ब्रह्म वित् स्वयम्॥८६॥

दर्शन तथा अदर्शनका त्याग करके जो अद्वैत वादी रहता है वह पुरुष स्वयं ब्रह्म है ॥ ८६ ॥

सन्यास दशा

शीतनि वाणार्थ

कौपिन युगलं वासः कथा शीत निवारिणिं पादुके।
चापि गृह्णी यात कुर्या न्नन्यस्य संग्रहम् ॥ १ ॥

दो कौपान एक आच्छादन वस्त्र तथा एक खड़ाऊं के अति-
रिक्त और कुछ संग्रह न करे ॥ १ ॥

दंडात्मनोस्तु संयोग सर्व दैव विधीयते।
न दंडेन विना गच्छेदिषु क्षेपत्रयं बुद्ध ॥ २ ॥

दंडसे सर्वदा शरीह का सम्बन्ध रखना दण्ड के विना बुद्धि
मत्व तीन डग भी न जाय ॥ २ ॥

दंड त्यागे शतं चरेत् ॥ ३ ॥

दंड त्याग करने पर शतं प्राणायाम करे ॥ ३ ॥

न शीतं नचोषजं न दुःखं न सुखं न माना।
वमानेच षडर्मि वर्जत् ॥ ४ ॥

शीत, उष्ण, दुःख, सुख, मान अपमानी यह ६ वस्तु त्याग
देनी चाहिये ॥ ४ ॥

निंदा गर्व मत्सर दंभदर्पैच्छाद्वेष सुख दुःख काम।
क्रोध लोभ मोह हर्षा सूयाहं कारादिश्चहित्वा ॥ ५ ॥

जो, गर्व, मत्सर, दंभ, दर्प, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, असूया, अहंकारादि को छोड़ कर ॥ ५ ॥

स्व वपुः कुणपभिवद्दश्य तथे ।
तस्तद पुर मध्वस्तं ॥ ६ ॥

अपने शरीर को मुर्दा समझे क्योंकि ज्ञान होने के बाद शरीर तो मरा ही हुआ है । इस लिये योगी को निन्दा त्याज्य है ॥ ६ ॥

अनित्याशुचि दुःखानात्म सुनित्य ।
शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ७ ॥

अनित्य, अशुचि, दुःख, अनात्म बुद्धि सुख, आत्मख्याति यह सब अविद्या के स्वरूप हैं ॥ ७ ॥

गवां सर्पि शरीरस्थं न करोत्यं गपोषणं ।
तदेव कर्म रचितं पुनस्तस्यैव भैषजं ॥
एवं सर्व शरीरस्थ सर्पिवत्परमेश्वरः ।
विना चोपासनां देवो न करोति हितं नृषु ॥८॥

जैसे गऊ के शरीर में रहता हुवा दूध और घी अङ्ग पोषण के लिये नही होता, यदि वही अलग कर लिया जाय तो पुष्टिकारक होगा । इसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर व्यापी ईश्वर विना उपासना के फल नहीं देता ॥ ८ ॥

ज्ञानदंडोधृतोयेन एकदंडोसउच्यते, काष्टदंडोधृतो-येन सर्वाश ज्ञान वर्जितःस याति नरकान्घोरान् महारो-रेव संज्ञितान्। तितिक्षा ज्ञान वैराग्यशमादिगुणवा-र्जितः भिक्षामात्रणेयोजीवीत्सपापो यतिं वृत्तिहा ॥९॥

भिक्षा का पात्र वही है कि जिसने ज्ञान दण्ड धारण किया है और जिसने दर्शनीय काष्ठदंड धारण किया है वह महारौरव में पड़ता है। तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य शमादि गुणों से वर्जित जो भिक्षा मात्र से जीता है वह यति वृत्ति नष्ट करने वाला है॥ ९॥

यतिपरमहंसस्तुतुर्याख्यश्रुति चेदतिः।
यमश्चेनियमेयुक्तोविष्णुरूपित्रिदंडभृत् ॥१०॥

चतुर्थ अवस्था में श्रुति से कहे मार्ग से यम-नियम से युक्त विष्णु-रूप भी दण्ड को धारण करने वाले ही परमहंस होते हैं॥ १०॥

नचोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया।
नानुशासन वादाभ्यांभिक्षांलिप्यतेनकर्हिचित्॥
एककालं परेत्भैक्ष्यं न प्रसज्जेतविस्तरे।
भैक्ष्येप्रसक्तोहियति विषयेश्चपिसज्जति ॥११॥

उत्पात का कथन, नक्षत्र विद्या द्वारा या बहस करके संन्यासी का भिक्षा नहीं देनी। एक समय भिक्षा करनी चाहिये, विस्तर

पर नहीं सोना चाहिये, भिक्षा में जो यति असक्त हैं वह विषयों में भी असक्त हो जायगा ॥ ११ ॥

आशांम्बरोनिंनमस्कारो न स्वद्याकारानेनिंदांस्तु-
तियद्रिंच्छिकोभवेत् भिक्षुनवाहनं नविसर्जनं-
न मंत्रं न ध्यानं नोपासनं न लक्ष्यं नालक्ष्यं-
न पृथङ्ग नापृथङः न चाहं न त्वं न च सर्वं चानि-
केतस्थितिरेवसभिक्षुः सौवर्णादिनां नैव
परिग्रहेतल्लोकं नावलोकयेच्या ॥ १२ ॥

आशा से दूर, स्वाहा; स्वधाकार से वर्जित, निन्दा स्तुति रहित, आवाहन, विसर्जन, मंत्र, ध्यान, उपासना लक्ष्य पृथक् लक्ष्य, आदि न करने चाहिये। निर्वाहस्थान में स्थित दीप की तरह से रहे वही भिक्षु है। न लोक वासना रक्खे, स्वर्णादि किसी से न ले ॥ १२ ॥

योभवेत्पूर्व संन्यासी तुलयावै धर्मतोयवि ।
तस्मैप्रणामः कर्त्तव्योनेतरायकदाचन ॥१३॥

जिसने अपने से पहिले संन्यास लिया होय उसको नमस्कार करना। दूसरे को कभी नहीं।

स्वमाहृतपर्णेषु स्वयंशीर्णेषु वापुनः ।
भुंजीतनवटाश्चत्यकरं जानांचमंणके

आपद्यापिनकांस्येषुमलाशीकांस्यभोजनः,

सौवर्णेराजतेताम्रेमृत्मयेत्र पुशीसयोः ॥१४॥

आपत्ति आने पर भी अपने लाये हुये पत्ते पर खाये और लाये कुश पर सोये) कांसी, सोना, रूपा, ताम्र, कलई शीशा आदि धातु वालों में नहीं खाना चाहिये ॥ १४ ॥

एकए व चरोंभित्यं सिध्यार्थेमसहायकः ।

सिद्धिमेकस्थपश्यन्हो तज्जहाति नहोयते ॥१५॥

एकान्त सिद्धि के लिये इकला विचरे, नौकर आदि को साथ न रक्खे ऐसे पुरुष को न कुछ त्याज्य है न उसे कोई त्यागता १५

स्थावरं जंगमं बीजं तैजस विषया युधं ।

षडेतानि नग्रहणीया द्यतिमुत्र पुरीषवत् ॥१६॥

आसन, पात्र का लोभ, संचय, शिष्य संग्रह, दिवा और सोना वृथा बोलना यह छः संन्यासी के लिये बन्धन के कारण हैं स्थावर, जंगम, विढ़, तैजस, विषम, आयुध इन सबको मूत्र और पुरीष की तरह त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥

योऽन्यथासंतमात्मानमन्यथाप्रतिपाद्यते ।

किं तेन न कृतंपापं चौरेणात्मापहारिणा ॥१७॥

जो वास्तवमें कुछ और है, और अपनेको कहता है कुछ और उस आत्म वंचक से क्या बचा ? उसने सब पाप कर लिये ॥१७॥

असुर्यानामतेलोकाअन्धेन तमसाऽवृता:
तांस्तेप्रत्यापि गच्छतियेकेचात्महनोजना: ॥१८॥

जो आत्मघाती पुरुष हैं वे असुर सम्बन्धी तथा घोर अंधकार में लीन हैं, इसीं को वह मरणान्त में पाते हैं ॥ १८ ॥

अनादि निधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरं ।
लोकाध्यक्षंस्तुवन्नित्यं सर्वदुखातिगोभवेत् ।१९।

अनाद्यनन्त सर्वलोकाध्यक्ष महेश्वर सर्व लोक पति विष्णु को स्मरण करने से सम्पूर्ण दुःखों से छूट जाते हैं ॥ १९ ॥

अदीक्षितायेकुर्वन्ति जपपूजादिका: क्रिया: ।
निष्फलं तत्प्रिये तेषांशीलायामुप्तबीजवत् ॥२०॥

हे प्रिये! सद्गुरु से दीक्षा लियें बिना जो पूजादि क्रिया करते हैं उनकी वह सब क्रिया निष्फल जाती हैं, जैसे ऊसर में बीज बोया ॥ २० ॥

यत्पूर्णानन्दैक बोध स्तद्ब्रह्माह-
मस्मितिकृतकृत्यो भवति ॥२१॥

जब पूर्णानन्द का बोध होता है, तब "ब्रह्मास्मि" यह ज्ञान होकर कृत्य कृत्य हो जाता हूँ ॥ २१ ॥

वंधंहार्दनिवारयत् ।
सुमर्थ मखिलं देयाद्दियातितोर्थ महेश्वर: ॥२२॥

जीवन मुक्ति विवेक के द्वारा हृदय बंधन नाश करते हुये तीर्थ रूपी गुरु से अभिन्न श्री महेश्वर सम्पूर्ण पुरुषार्थ दो ॥२२॥

संगंत्यजेत मिथुन वृत्ति नां मुमुक्षु ।
सर्वात्मना न विसृजेत् बहिरिन्द्रियाणि ॥ २३ ॥

प्रवृत्ति वाले पुरुषों का संग न करो, सर्वात्म भाव से मुमुक्षु बहिरिन्द्रियों का दमन करे ॥ २३ ॥

भेदाभेदोसपदिगलितोपूण्य पाप विशीर्णो,
मायामोहोच्चयमधिगतौ नष्ट संदेह वृत्तिः ।
शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्यतत्वायबोधं,
निस्त्रैगुण्येपथि विचरतां कोविधिः कोंनिषेधः ॥२४॥

सपदि भेदा भेद, पुण्य पाप, माया मोह, संदेह वृत्ति के नष्ट होने पर शब्द से अतीत, त्रिगुण रहित आत्मबोध प्राप्त त्रिगुण रहित पथ में विचरने वाले के लिये क्या विधि और क्या निषेध है ॥ २४ ॥

सर्वत्रावस्थितं शान्तं न प्रपद्ये जनार्दनम् ।
ज्ञानचक्षुर्विहीनत्वादंधः सूर्यमिवोदितं ॥२५॥

सर्व व्याप्त शान्त परमात्मा को जो नहीं देखता, ज्ञान चक्षु से रहित उसे उदय कालीन सूर्य को न देखने वाले अन्धे की तरह समझो ॥२५॥

कृपान्वलोक तोयेषा गविद्या या.ति संन्नवं ।
परमात्म स्वरूपा स्नद्गुरुन् प्रणतोस्माहम् ॥२६॥

जिसके कृपा कटाक्ष से अविद्या नष्ट हो जाती है, उस परमात्म स्वरूप गुरु को नमस्कार है ॥ २६ ॥

इष्टमिष्टमिदं नेतियोऽनन्नपिन सज्जते ।
हितं सत्यं मितं वक्तुं तमजिह्वं प्रचन्नते ॥ २७ ।

जो इष्ट अनिष्ट को "नहीं समझता, जो खाना नहीं जानता हित् सत्य और मित बोलने वाले उसे गूंगा समझो ॥ २७ ॥

अद्य जातांयथानारी तथाशोडषवार्षिकिम् ।
शतवयचि योद्रष्ट्वानिर्विकारसषंठकः ॥२८॥

आज उत्पन्न होने वाली षोडशी या वृद्धा को देख कर जिसका मन विकृत नहीं होता उसे षण्ढक कहा है ॥२८॥

वर्णाश्रमादयोदेहे माययापरिकल्पताः ।
मात्मनोबोधरूपस्यममतेसन्ति सर्वदा,
इतियावेद्वेदान्तेः सोतिवर्णाश्रमी भवेत् ॥२९॥

वर्णाश्रमादिक देह के विषय हैं, आत्म बोध रूप में यह रहते नहीं, मैं बोध स्वरूप हूँ ऐसे व्यक्ति के लिये वह कुछ नहीं ।२९।

यस्यवर्णाश्रमी चारो गलितः स्वात्मदर्शनात् ।
सवर्णानाश्रमाना सर्वनितित्य स्वात्मविस्थितः ॥३०॥

आत्म साक्षात्कार होने के बाद जिसका वर्ण और आश्रम का आचार गलित हो गया वह सर्ववर्णाश्रमों को अंगीकार करके अपनी आत्म स्थिति लाभ है ॥३०॥

न देहो नेद्रियप्राणो न मनो बुध्यहं ।
कृति न विर्श नैव माया च नचव्योमादिकं जगत् ॥
न कर्ता नैव भोक्ता च नच भोजयिता ।
तथा केवलंचित्सदो ब्रह्मैवात्मायथार्थतः ॥३१॥

देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि अहंकार, मायाव्योमादि जगत तथा कर्ता, भोजयिता यह सब कुछ नहीं केवल एक मात्र चित्सद ब्रह्म ही यथार्थ है ॥ ३१ ॥

उत्पद्यमानारागाद्याविवेकतानवन्हिनातदा ।
तदैवदह्यन्तेकुलस्तेषां प्ररोहणां ॥३२॥

रागादि तृणों को उत्पन्न होते ही जो विवेक वन्हि से जला देते हैं उन्हीं का कुल बढ़ना है ॥ ३२ ॥

यथानिरंधनोर्वान्ह स्वयोनावुपशाम्यति ।
तथा वृत्तिक्षयाचित्तं स्वयोनावुपशाम्यति ॥३३॥

जिस प्रकार इंधनके विना वह्नि स्वयं शान्त हो जाती है, उसी प्रकार वृत्ति क्षयसे चित्त स्वयं शान्त हो जाता है ॥ ३३ ॥

अपकारिणे कोपश्चेद कोपेकोपा कथंनते।
धर्मार्थकाम मोक्षाणां प्रसह्यपरिपंथिनी ॥३४॥

यदि तुम्हें अपने अपकारि पर ही क्रोध आता है तो धर्म अर्थ काम मोक्ष रूपी रत्नोंको नष्ट करने वाले अपकारी क्रोध पर ही तुम्हारा क्रोध क्यों नहीं होता ॥ ३४ ॥

फलान्वितोधर्म यशोर्थनार्थनाशनः।
सचेत्रपाथः स्वशरीरतायनः न चहे ना मुत्र,
हिताय यः सतांमनांसिकोपः समुपाश्रयेत् कथं ॥३५॥

क्रोध यदि अन्य की हानि रूप फलका होने वाला है तो हे पर्थ क्रोध करने वालेका ही धर्म, अर्थ, तथा यश नाश करता है यदि उसका फल दूसरे को न दे सको तो अपने शरीर को ही नष्ट करता है भला जिससे इस लोक और परलोक दोनों में भलाई नहीं ऐसा क्रोध सज्जन कैसे अपने चित्तमें रक्खेंगे ॥ ३५ ॥

निवृतो व्रजतोवापियस्य चक्षुर्नदूरगम्।
चतुर्युगांत्यक्त्वा परिव्राटसोऽन्ध्यउच्यते ॥३६॥

बैठे या चलते जिसकी दृष्टि १६ हाथ आगे नहीं जाती वह परि व्राट अन्धा कहा गया है॥ ३६ ॥

ननिन्दां नस्तुतिं कुर्यान्नकिंचिन्मर्माणिस्पृशेत्।
नातिवादिभवेद् तसर्वत्र समोभवेत् ॥

न संभावेत्स्त्रियंक्वांचित्पूर्वद्रष्टां चनस्मरेत् ।
कथांवच्चर्जयेत्तासां नमश्येल्लिखितामपि ॥३७॥

न निन्दा करो न स्तुति करो न कोई मर्म छूओ ज्यादह न बोले समभाव से रहे किसी स्त्री से न बोले देखकर स्मरण न करे, स्त्री का चित्र भी न देखे ॥ ३७ ॥

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थोयस्य जाग्रत विद्यते ।
यस्य निर्वासनोबोधः सजीवन्मुक्तउच्यते ॥३८॥

जो सुषुप्ति में जागता है, जो विद्या रूप निद्रा में सोता है, जिसको निर्वासना बोध है उसे जीवन मुक्त कहा गया है ॥ ३८ ॥

हृदयात्सं परित्यज्यसर्वमेव महामतिः ।
यस्तिष्ठतिगतव्यग्रसमुक्तपरमेश्वरः ॥३९॥

जो महापुरुष हृदयमें से सर्व विषय वासनाओं को त्यागकर चित्तकी व्यग्रता से मुक्त है वह महा पुरुष परमेश्वर है ॥ ३९ ॥

विचारितमलं शास्त्रं चिरमुद्ग्राहितं मिथः ।
संत्यक्त वासना न्मौनाद्रतेनास्त्युतमंपदं ॥४०॥

पूर्ण रीति से शास्त्र का विचार किया होय चर्शा के द्वारा उसे ग्रहण किया होय जिसने वासना त्यागदो होय और मौन हो उसे उत्तम कोई पद नहीं ॥ ४० ॥

नियम

अहिं सा, सत्या,स्तेय, ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः ।

शौच, संतोष, तप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमाः ॥४१॥

यम, नियम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यम, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रतिधान यह नियम है ॥ ४१ ॥

पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय ।

यमान सेवेत सततं ननित्यं नियमान बुधैः ॥

यम न पतत्य कुर्वाणो नियमान केवलाइ भजन् ॥४२॥

चतुर पुरुष को सर्वदा यमों का सेवन करना चाहिये सदा नियमों के पालन से यम की भी चिन्ता नहीं क्योंकि यमको न सेवन करने वाला केवल नियमों के द्वारा पतित होता है ॥४२॥

द्ं विषयान् प ंचमनश्चैवाति ।

चंचलंचिरायेदात्यनारेश्मिन् प्रत्याहारः सउच्यते ॥४३॥

शब्दादि पांच विषयों के कारण पांच इन्द्रिय तथा चञ्चल मनको विषयों से रोक आत्म ज्योति के चिन्तन में लगना प्रत्याहार है ॥ ४३ ॥

मनः संकल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान ।

धारयित्वा तथात्मानं धारणासाप्रकीर्तिता ॥४४॥

सर्व सङ्कल्पों को छोड़कर मनकेवल आत्मा का ही चिन्तन करे उसे धारणा कहते हैं ॥ ४४ ॥

निग्रहीतस्यमनसो निर्विकल्प सधोमतः ।
प्रचारः सतुविज्ञेयः सुषुत्प्यन्योत्समः ॥
लियतेत सुषुप्तोहिन्नि गृहीतं न लियते ।
तदेव निर्भयं ब्रह्मज्ञानालोकं समंततः ॥४५॥

बुद्धिमान मनुष्य का निगृहीत मन सुषुप्ति के तुल्य न होकर उससे विलक्षणता वाला है क्योंकि सुषुप्ति में मन लय हो जाता है और निग्रह किया मन लय नहीं प्राप्त करता । वही निर्भय ब्रह्म है । जबकि पुरुष चतुर्थ अवस्था में पहुंचाता है ॥ ४५ ॥

पांडुक्योपनिषद्

यदा नलीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ।
अनिङ्ग नमना भासं निषपन्नं ब्रह्मतत्तदा ॥४६॥

जब चित्त न लीन होता और न विक्षेप प्राप्त करता और अचल तथा अनादक हो जाता है तो ब्रह्मरूप हो जाता है ॥४६।

समाधि निधूंत मलस्य चेतसो ।
निवेशतस्यात्मनि यत्सुखं भदेत् ॥

नशक्यते वर्णयितुं गिरा तदास्वयं ।

तदंतःकरणेन गृह्यते ॥ ४७ ॥

समाधि से पवित्र हुवे मनको आत्मा में लगाने वाले को जो सुख होता है, उसको वाणी नहीं कह सकती वह केवल अन्तःकरण के अनुभव की वस्तु है ॥४७॥

यदापं चावितिष्ठं ते ज्ञानानी मनसासह ।

बुद्धिश्चनविचेष्टते तमाहुपरमांगति ॥४८॥

जब मन सहित पांचो ज्ञानेन्द्रिय स्थिरता को प्राप्त होती हैं तथा बुद्धि भी व्यापार नहीं करतो वही अवस्था सर्वोराम कही गई है ॥ ४८ ॥

तद्यथा अहिनिलवमनी बल्मिके-

मृतामत्यस्तां एव मवेदं शरीर सेते ॥ ४९ ॥

जिस प्रकार सांप केंचुलां छोड़ कर फिरता है उसी प्रकार शरीर भी अलग रह कर सोता है ॥ ४९॥

तत् सन्निधौवैरत्याग क्रियाफ ज्ञाल्लाबितकं ।

रत्नोपस्थानंवीर्य लाभः (जननादि भयाभावः)

जन्म कथता संबोधः शौचात्स्वांग जुगुत्सापरै

रसंसर्ग सत्वशुद्धिः सौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजयात्म,

दर्शनयोग्यत्वानि च संभवन्ति ।

संतोषादनुत्तमः सुखलाभः,
कार्येन्द्रिय बुद्धि शुद्धिरशुद्धिक्षया तपसः।
स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः॥
समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्॥ ५० ॥

अहिंसा की प्राप्ति में वैर त्याग, वाणी के द्वारा दूसरे को क्रिया तथा उसका फल देने की सामर्थ्य आती है। अनिच्छा होते हुये भी योगी को सर्व रत्नों की प्राप्ति होती है. शौच से सत्व शुद्धि सुमन से एकाग्रता तथा इन्द्रिय जय तथा आत्म दर्शन की योग्यता। सन्तोष से अनुत्तम सुखलाभ होता है, तपस्या से कार्येन्द्रिय वुद्धि का शुद्ध तथा अशुद्धता नष्ट होता है। स्वाध्याय से इष्ट देवताओं का संप्रयोग इश्वरके प्रतिधान से ईश्वर सिद्धि होती है॥ ५०॥

अच्छेदांङ्म मनसिप्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान।
आत्मबिज्ञानमात्मनिमहति,
नियच्छे तद्यच्छेच्छांत आत्मनि॥५१॥

वाणी को मनमें, मनको ज्ञानात्मा में, ज्ञानात्मा को विशेष अहंकार में विशेष अहंकार को सूक्ष्म में एवं सूक्ष्म अहंकार को शुद्ध चैतन्य आत्मा में कल करना चाहिये। ५१॥

मौनंयोगासनं योगस्तिनिक्षैकान्तशीलता ।
विस्पृहत्वं समत्वं च सप्ततौन्येकदंडिनः ॥५२॥

मौन, योग, आसन, तितिक्षा, एकान्त-शीलता, निस्पृहत्व यह एक दण्डधारी संन्यासी के लक्षण हैं ॥ ५२ ॥

अात्मसंस्थं मनः कृत्वा न किं चिदपिचिंतत्येत् ॥५३॥

आत्मामें मनको लगाकर और कुछ भी चिन्तन न करे ॥ ५३ ॥

द्वौ क्रमौ चित्तनाशायं योगी ज्ञानं च
राघवं योगस्तद्वृत्तिरोधोहिज्ञानंसम्यगवक्षण
असाध्यः कस्य चियोगः कस्यचितज्ञानंनिश्चयः
प्रकारौद्वौ ततो देवो जगाद परमेश्वरः ॥५४॥

हे राघव ! मन। नाश के दो उपाय है १–योग और २–ज्ञान, योग वृत्तियों के निरोध को तथा ज्ञान आत्म दर्शन से होता है। किसी किसी को ज्ञान देर से होता है, किसी किसी को अभ्यास देर से होता है, ईश्वर ने यह दो ही उपाय कहे हैं। दीर्घकाल के निरन्तर अभ्यास से ही यह साध्य है ॥ ५४ ॥

द्रष्टानुश्रविक विषयवितृष्णस्य वशीकार !
संज्ञा वैराग्यं ॥ ५५ ॥

प्रत्यक्ष तथा सुने हुवे विषयों से तृष्णा रहित पुरुष उस विषय में जो तितिक्षा उसे वशीकार वैराग्य कहते हैं ॥ ५५ ॥

चित्तेऽर्थविरतेर्नाशात् सत्वात्मनिस्थिते ।
शुद्धे सत्वापत्तिरुदाहृता दशाचतुष्टया ॥
भ्यासादसंसर्गफलातुयारूढ सत्वचमत्कारा
प्रोक्ता भूमिकापं चकाभ्यासात्स्वात्मारामतया
संसक्तिनामिका भृशंयाभ्यां तराणां वाथानां-
पदार्थानाम भावनात् । परत्युनचिरंप्रयत्नेनावबोधनं ।
पदार्थाभाविनिनाम षष्ठि भवति भूमिका ।
भूमिषटक चिराभासाभ्देद स्वानुयंत्लं भवात् ।
यतस्वभावैकनिष्टत्वंसाज्ञेयातुर्यगागतिः ॥५६॥

हमें अपने स्वरूप को देखना चाहिये। उसके लिये वैराग्य आदि साधनों की आवश्यकता है। इच्छा और शुभेच्छा नाम की प्रथम भूमिका कही गई है। गुरु-सेवा तथा स्वधर्म का निरन्तर श्रवण मनन करना और उसीमें रत रहने को विचारणा नाम वाली दूसरी भूमिका समझो। विचारणा तथा शुभेच्छा दोनों भूमिकाओं के अनुभव के बाद इन्द्रियां अपने अपने विषय को ग्रहण न करें और मन की संकल्प अवस्था सम हो जाय उसे तनु मानस नाम की तीसरी भूमिका कहते हैं। तीनों भूमिकाओं की सिद्धि प्राप्ती के बाद सभी बाह्य विषयों से निवृत्ति एवं उपरामता हो जाने पर चित्तशुद्धि अर्थात माया

और उससे उत्पन्न होने वाले कर्मों का न्यास हो जावेगा। तदन्तर त्रिपुटी का सत्य स्वरूप आत्मा में लय होगा और विकल्प समाधि रूप जो स्थिति होगी उसका नाम सत्वापत्ति नाम की चौथी भूमिका है। चारों भूमिकाओं के बाद बाह्यान्तर विषयों से संग्रहित होकर समाधी की परिपक्व अवस्था की प्राप्ति से परमानन्द ब्रह्म साक्षात्कार युक्त जो चित्त की अवस्था होती है उसका नाम असंसक्ति अर्थात पांचमी भूमिका है। पांचमी भूमिका क अभ्यास से जब आत्मा के विषय में अत्यन्त रती हो और बाहर व भीतर के पदार्थों की प्रतीति न हो और जब अत्यधिक प्रयत्न करने पर पदार्थों का भान न हो, इस प्रकार की जो अन्तः-करण की अवस्था हो उसका नाम पदार्थ भाविनी नाम की छठी भूमिका है। दीर्घ काल तक उक्त छः भूमिकाओं का अभ्यास होने पर जब प्रयत्न करने पर भी भेद की प्रतीति न हो और जब चित्त केवल स्वरूप में ही लीन हो जाता है तब तुर्यानाम की सातवीं भूमिका सिद्ध होती है।

श्री वसीष्ट मुनि ने उक्त सात भूमिकाओं में से प्रथम तीन भूमिकाओं को जाग्रत अवस्था वाली कही हैं। यह सही भी है। यह जगत जाग्रत भेद बुद्धि से ही दीखता है। और पीछे की सभी भूमिकाओं में नाम रुपात्मक जगत का लोप हो जाता है। 'मैं' और 'मुझसे भिन्न' इस प्रकार का भेद नहीं रहता। इस प्रकार जो सद्ज्ञान प्राप्त होता है मुमुक्षु उसी की उपासना करते हैं।५६।

द्वैत्यन्नास न सद्र मोनाहं नाप्यन हंकृति ।
केवलं क्षीण मनन आस्ते क्यनिर्गतः ॥
अद्वैतं केचिदिच्छन्तिद्वैत मिच्छन्ति केचन ।
समंब्रह्म न जानन्ति द्वैताद्वैत विवर्जितं ॥
अंतः शून्योबंहिशून्यः शून्यकुंभरुपांबरे ।
अन्तः पूर्णो बहिपूर्णः पूर्ण कुंभश्र्वार्ण वे ॥५७॥

सुपुप्ति नाम की पांचमी भूमि को प्राप्त होने पर जिसकी सभी भेद रूप आशाएं निवृत्त हो जाती हैं ऐसा पुरुष केवल अद्वैत स्वरूप में स्थित् रहता है। वह बाहर के सभी व्यवहार करता हुआ भी सदा अन्तर्मुखी रहता है और थका हुआ सोया हुआसा माल्लूम देता है। इसके अभ्यास में जो योगी रत है वह वासना रहित होकर गाढ़-सुषुप्ति नाम की अवस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में वह न सतरूप है न असत् रूप, अहंकारी या अहंकार रहित वाला नहीं—केवल मनन रहित ऐसा पुरुष द्वैत तथा अद्वैत से रहित रहता है। कितने ही द्वैत को चाहते हैं तो कितने ही अद्वैतताको, परन्तु यह सर्वत्र सम ब्रह्म तो दोनोंसे रहित है। वह तो वाहर तथा भीतर आकास के भांति पूर्ण है। गाढ़ निर्विकल्प समाधि की प्राप्त वाले कीतरहां संस्कार रूप से शेष रहता है।

मनसश्चेन्द्रियाणां च एकाग्रयं परमं तपः ।
तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्थः सधर्मः परउच्यते ॥५८॥

मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम् तप है। और यह तप सर्व धर्मों मे श्रेष्ठ है ॥ ५८ ॥

श्रद्धावां लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वापरांशांति मचिरेणाधि गच्छति ॥५९॥

श्रद्धा वाले को ज्ञान प्राप्त होता है, उससे जितेन्द्रिय होता है। और ज्ञान प्राप्ति से शीघ्र ही स्थाई शान्ति मिल जाती है ॥ ५९ ॥

तस्य पुत्रादाय मुपयन्ति ।
सुहृद साधु कृत्यांद्विषः तः पापकृत्याः ॥६०॥

उसका उत्तराधिकार शिष्य या पुत्र ग्रहण करता है उसका मित्र पुण्य कमाता है और द्वेषी पाप कमाता है ॥ ६० ॥

यस्यानुभवपर्यंतातत्वेबुद्धिप्रवर्त्त ।
तद्दृष्टिगोचर सर्वेमुच्यन्ते सर्वपातकै ॥६१॥

जिसके साक्षात्कार होने तक तत्व के विषय में बुद्धि चलती है, उसकी दृष्टि में पड़े हुये सब जीव सर्व पाप मुक्त हैं ॥ ६१ ॥

सर्ववेदं संवाएततत्सत्रंयन्मरणं तदेव भृथः ।
लीयन्तेयत्र भूतानि निर्गच्छन्तियतः पुनः,
तेनलिंगपरं व्योमः निष्कलः परमः शिवः ॥६२॥

जिसमें सर्व भूत भौतिक प्राणी लय पाते तथा जिसमें से पुनः उत्पन्न होते हैं वह श्री सदा शिव का ज्योति स्वरूप लिङ्ग कहलाता है ॥ ६२ ॥

आत्म क्रीडा क्रीडे आत्मरति ।

क्रियावानेष ब्रह्मविदं वरिष्ठः ॥६३॥

आत्माराम में क्रीड़ा करने वाला आत्म क्रियावान् है वह वेत्ताओं में श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥

निमेशार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिब्रह्ममयोविना ।

यथा तिष्ठन्तिब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः ॥६४॥

ब्रह्ममयी वृत्ति विना निमेषार्ध भी नहीं ठहर सकते जिस प्रकार ब्रह्मा, सनक और शुकदेवादिक ॥ ६४ ॥

दास्तेहं देह द्रष्यास्मि शंभो

जास्तेन्सो जोवद्रष्ट्यात्रि द्रष्टे ॥

सर्वस्यात्मन्न सात्म द्रष्टय ।

स्त्वमेव इत्येवं धोनिश्चिता सर्पणशास्त्रः ॥६५॥

हे शंभो ! देह दृष्टि में मैं आपका दास हूं, त्रिपिष्टि देखते हुवे जीव और आत्म दृष्टि से आपका स्वरूप हूँ । इस प्रकार सर्व शास्त्रों का निश्चय है ॥ ६५ ॥

विश्वेशो जनको उमाच जननी गंगा च मात्रीश्वसा।
ढुंडीव भैरव दंडपाणीसदृशाज्येष्ठमम भ्रातरम् ॥
सा काशीमणिकर्णिका च भगिनी जायाममेयंमती।
सत्कर्माणि सुतासदैवशुभदाकाश्यां कुटुंब मम ॥६६॥

विश्वेश जनक, उमा जननी, गंगा मौसी, ढुंढी भैरव दण्ड पाणी जैसे मेरे बड़े भाई। वह काशी मणि कर्णिका भगिनि, तथा बुद्धि स्त्री सत्कर्म लड़के सर्वदा शुभ फल देने वाली काशी में मेरा सब कुटुम्ब है ॥ ६६ ॥

शिवः शिवोक मस्मिति वादिनं यत्र व कश्चन।
आत्मवासहतादात्म्यै भागिनं कुरुते भृशम् ॥६७॥
श्री गौर्या सकलार्थदा निजयदा भोजेन मुक्तिप्रदम्।
मौढं विघ्नवनंहरन्त मवद्यं श्रीढुंडो तुंडा सीना ॥
वंदे चर्म जपालि कापे करणैः वैराग्यसौख्यात्परम्।
प्रदिसन्तमन्त विधुरं श्री काशोकेशं भजे ॥६८॥

श्री गौरी सकल अर्थको देने वाली, स्वयं मुक्ति प्रदाता, विशाल वन रुपी मनको जलाने वाले ढुंढीराज ऐसी शस्त्र चर्म कपालि वैराग्य में सुख मानते हैं, नहीं है ऐसी वार्णासे विधुर श्री काशी पति को भजो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

प्रातर्वैदिक कर्मतः तदनु रत् वेदान्त संचितथा ।
पश्चात् भारतमोक्ष धर्म कथया वासिष्ठ रामायणात् ॥
सायं भागवतार्थ तत्व कथया रात्रौनिदिध्यासनात् ॥
कालोगच्छतु न शरीर मरणं प्रारब्ध कंठार्पितं ॥६९॥

सुबह वैदिक कर्म, इसके बाद वेदान्त चिन्तन इसके पीछे महाभारत मोक्ष धर्म कथा, रामायण, योग—वाशिष्ठ तथा सायंकाल भागवतके अर्थ की तत्वकथा, रात्रिमें निदिध्यासन इस प्रकार जिस व्यक्ति का समय व्यतीत होता है, उसको शरीर का मरण नहीं होता उसके गले में प्रारब्ध रुपी माला पड़ी है ॥६९॥

वस्त्रैश्च भूषणैश्चैव शोभास्यात् वाहयोषिताम् ।
विद्यया तपसाश्चैव राजन्ने द्विजनन्दना ॥७०॥

वस्त्र और भूषण से वेश्याओं की शोभा होती है विद्या और तप से द्विज बालक शोभित होते हैं ॥ ७० ॥

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्यितिपुरुषः ।
किमिच्छत् कस्य कामाय शरीरमनु संज्वरेत् ॥७१ ॥

आत्मा को यह जानना है कि यही परम पुरुष है। फिर क्या चाहता हुवा, किस काम के लिये शरीर को पीड़ित करता है ॥ ७१ ॥

विचारित मलंशास्त्रं चिरमुद्ग्राहिनंमिथः ।
संन्त्यक्तवासनान्मौनादृतेनास्त्युत्तमं पदम् ॥७२॥

अद्वैत शास्त्रका विचार तथा गुरु शिष्य संवाद द्वारा वासना त्याग तथा वाणी संयम से बढकर कोई उत्तम पद नहीं ॥ ७२ ॥

दर्शनादर्शनेहित्वा स्वयं केवल रूपतः ।
यस्तिष्ठति सतुब्रह्मन् ब्रह्म नब्रह्मत्स्वयम् ॥७३॥

ब्रह्म को जानता हूँ, या ब्रह्म को नहीं जानता इस झगड़े को छोड़कर जो महा पुरुष अद्वितीय चैतन्य रूपसे आदर्श स्थापित करता है वह परब्रह्म ही है ॥ ७३ ॥

शक्यं जेतुं मनोराज्यं निर्विकल्पसमाधितः ।
सुसंपादः क्रमात् सोऽपि सविकल्प समाधिना ॥७४॥

निर्विकल्प समाधि से मनो राज्यको जीत सकता है, और वह भी क्रमसे सविकल्प समाधि से साध्य है ॥ ७४ ॥

बुद्ध तत्वेन धीदोष शून्ये नैकान्त वासिना ।
दीर्घं प्रणव मुच्चार्य मनोराज्यं विजीयते ॥ ७५ ॥

धी दोष शून्य, एकान्त वासी बुद्धि तत्व के द्वारा दीर्घ ओंम उच्चारण कर मनोराज्यको जीति सकता है ॥ ७५ ॥

जिते तस्मिन् वृत्ति शून्यं मनस्तिष्ठति मूकवत् ।
एतत्पदं वशीष्ठेन रामाय बहु धेरितम् ॥ ७६ ॥

उस मनोराक को जीत लेने पर, मन मूक की तरह शून्य हो जाता हैं। यह स्थान वशिष्ठ ने रामको बहुत बार कहा है ॥७६॥

द्रश्यं नास्तितो बोधेन मनसोद्रश्य मार्जनम् ।
संपन्नं चेत्तदुत्पन्ना परानिर्वाण निर्वृतिः ॥ ७७ ॥

दृश्य कुछ नहीं जब ऐसा ज्ञान हो जायगा तो इसके द्वारा मनसे दृश्य रूपो कूड़ा झाड़ निकलना ॥ ७७ ॥

निद्रा भिक्षे स्नान शौचे नेच्छामिव करोमिच ।
दृष्टारश्चेत् कल्पयन्ति किंमे स्यादन्य कल्पनात् ॥७८॥

निद्रा, भिक्षा, स्नान, शौच की मैं इच्छा नहीं करता, जब देखने वाले ही कल्पना करते हैं तो मुझे कल्पना करने की क्या आवश्यकता ॥ ७८ ॥

गुंजा पुंजादि दह्येत नान्या रोपीत वन्हिना ।
नान्यारोपित संसार धर्मा नेव महं भजे ॥ ७६ ॥

दूसरे से आरोपित गुंजारूप वन्हि जलाती नहीं, उसी प्रकार दूसरे से आरोपित संसार की मैं सेवा क्यों करूं ॥ ७९ ॥

प्रारब्ध कर्मणीक्षीणे व्यवहारो निवर्त्तते ।
कर्माक्षये त्वसौ नैव शाम्येत् ध्यान सहस्त्रतः ॥८०॥

प्रारब्ध कर्म के नष्ट हो जाने से व्यवहार समाप्त हो जाता

है, कर्म क्षयसे संसार नष्ट नहीं होता वह तो ध्यान से ही होता है ॥ ८० ॥

देवार्चनं स्नान शौच भिक्षादौ यवर्तीं वपुः।
तारं जपतुवा क्वद्त्त पठन्याम्नाय मस्तकम् ॥ ८१ ॥
विष्णु ध्यायं तुधीयद्वी ब्रह्मानन्दे विलोयताम् ।
साक्ष्यहं किंचिद्प्यत्र न कुर्वेनापि कारये ॥ ८२ ॥

मेरा शरीर देवाचर्य स्नान भिक्षा चरन, अर्चन या शौचाचार करे, या मेरी वाणी तार (प्रणव) जप करे या वेदान्त शास्त्र पढ़ती रहे, बुद्धि विष्णु का ध्यान करती रहे या ब्रह्मानन्द में लीन हो जाय, मैं इन कामों का करता कराता नहीं सिर्फ साक्षी मात्र हूँ ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

नाहं मनुष्यो न च देव यक्षो न ब्राह्मणा क्षत्रिय वैश्यशद्राः ।
ब्रह्म चारीन गृहि बनस्थो भिक्षुर्न चाहं निजबोधरुपः॥ ८३॥

न मैं मनुष्य हूँ, न देव. न यक्ष न ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न वैश्य न शूद्र, न ब्रह्मचारी, न ग्रहस्थ न बाणप्रस्थी न भिक्षु हूं मैं तो अपना आत्म बोध चाहता हूँ ॥ ८३ ॥

भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित् ।
सर्वत्राद्वैतं कुर्यात् नाद्वैत गुरुणा सह ॥ ८४ ॥

भावसे अद्वैतता करो क्रिया से कभी नहीं । सर्वत्र अद्वैत पना करो परन्तु. गुरुके साथ नहीं ॥ ८४ ॥

अत्यन्त मतिर्धीमान् त्रयाणामेक मश्नुते ।
अल्पायुषो दरिद्रोवा धनपत्यो न संशयः ॥ ८५ ॥

जो बहुत होशियार होता है इसे नीचे की तीन वस्तुओं में से एक मिलती है निःसन्तान, स्वल्पायु था दरिद्रता ॥ ८५ ॥

ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधियते ।
एवमाहुः परेलोके ब्रह्मचर्य विदोजनाः ॥ ८६ ॥

ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मण की ब्राह्मणता है ऐसा परलोकज्ञ ब्रह्म वेत्ताओं ने कहा है ॥ ८६ ॥

नास्ति योगं विना सिद्धि र्नवासिद्धिं विनायशः ।
नास्ति लोके यशो मूलम् ब्रह्म चयन्ति परंतपः ॥८७॥

योग के विना सिद्धि और विना सिद्धि के यश नहीं होता, लोकमें यश के लिये ब्रह्मचर्य से बढ़कर दूसरा तप नहीं ॥ ८७ ॥

गंगाजलेन पक्वान्नं देवानामपि दुर्लभं ।
तिर्थे माधुकरो भिक्षा पवित्राणि युगे युगे ॥८८॥

गंगाजलसे बने पक्वान्न देवताओं को भी दुर्लभ है. अतः तीर्थ पर माधुकरी भिक्षा युग युगान्तर में भी पवित्र रहती है ॥ ८८ ॥

श्रीकृष्ण वेदीय काठकोपनिषद् वल्ली ३ अध्याय १

नाविरतो दुश्चरति न्नाशान्तो ना समाहितः ।
नाशान्त मानसोवापि प्रज्ञानेनैन माप्नुयात् ॥८९॥

जो पुरुष पाप से निवृत्त नहीं हुआ तथा इन्द्रिय दमन वाला नही, चित्त कीएकाग्रता से रहित स्वर्गादिक की इच्छा से विक्षिप्त कभी आत्मा को नहीं पाता ॥ ८९ ॥

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥९०॥
मन सस्तु परा बुद्धिर्बुध्धे रात्मा महा मतः ।
परम व्यक्त मव्यक्ता पुरुषः परः पुरुषान्न परं
किंचित्साकाष्टा सापरा गतिः ॥ मंत्र ११

इन्द्रियों से परे अर्थ, अर्थों से परे मन, मनसे परे बुद्धि और बुद्धि से जो परे हैं वही महा महत्त आत्मा है। महत्त से परे अव्यक्त अव्यक्त से परे पुरुष, पुरुष से परे कुछ नहीं जहां पराकाष्ठा है वही परागति है ॥ ९० ॥

य इमं मध्वदं वेव आत्मानं जीव प्रन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजु गुप्यते-एतेद्वै तत् ९१

जो इस कर्म-फल भोक्ता जीव रुप आत्मा को और भूत भविष्यत् के नियामक को अभिन्न अर्थात अभेद रुप से जानता है उसे किसी प्रकार के रक्षण की चिन्ता नहीं रहती। जब स्वयं अपने को अद्वैत रुप से जानता है तो फिर कौन किसका किससे रक्षण करने की चिन्ता करे, यह जीव तो उस ब्रह्म का ही तो स्वरुप है। अविद्या से भेद की प्रतीति होती है। यह अविद्या

दूर हो जाय तो ब्रह्म में और जीवमें भेद नहीं रहता भेद से ही जन्म तथा मरण होता है ॥९१॥

अध्याय २ बल्ली १

अंगुष्ठ मात्रऽपुरुषो मध्य आत्मनि तिष्टति ।
इषानो भूत भव्यस्य न ततो विजुप्सपते । एतद्वैतत् ॥

पुरुष अंगुष्ठ मात्र शरीर में स्थित है । हृदय कमान अंगुष्ठ मात्र है और उसके छिद्रमें जो अन्तः करण रुपी पुरुष स्थित है वह भी अंगुष्ठ मात्र है । वही नियामक ईश्वर है । ज्ञानी ऐसा जानकर अपने रक्षण की चिन्ता नहीं करता ॥९२॥

अंगुष्ठ मात्र पुरुषो ज्यातिस्विधूमकः ।
इशानो भूत भव्यस्य स एवाद्य सुश्वः एतद्वै तत् ॥९३॥

जैसा जाना है, वह भूत भविष्यत का नियामक है । वही आज है, वही कल भी रहेगा और वही ब्रह्म है ॥९३॥

श्रीकृष्ण यजुर्वेदीयकाठको पनिषत् वल्ली २

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जोवति कश्चन ।
इतरेणतु जीवन्ति यस्मिन्नेता वुपाश्रितौ ॥९४॥

कोई भी मनुष्य पान या अपान के कारण न जीता है, मरता है, किसी अन्य कारण से ही जीता और मरता है। जिसमें प्राण व अपान दोनों स्थित हैं उसी से जीता है ॥९४॥

काठकोपनिषद् बल्ली ३

यदा पंच।वतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्चनपि चेष्टते तामाहुः परमांगतिम् ॥९५॥

जब पांचों ज्ञान मन सहित स्थित हो जाते हैं और बुद्धि चेष्टा नहीं करती वह योगियों की परम् गति कही है ॥ ९१ ॥

काठकोपनिषद् श्रीकृष्णायजुर्वेद बल्ली ४

यदासर्वे मुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिताः ।

अथमर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ ९६ ॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।

अथमर्त्योऽमृतोभवस्येता बद्धयेनुशासनम् ॥९७।

जब बुद्धि की सभी ग्रन्थियां नष्ट हो जाता हैं, तब मनुष्य अमर अर्थात् मरण रहित हो जाता है। अविद्या की ग्रन्थी के कारण जब यह भान होता है कि मैं यह शरार हूँ. मेरा यह धन है मेरी यह सब अन्य वस्तुएं हैं तभी मनुष्य मरता है। उक्त भावना के विपरीत जब यह भान होता है कि मैं यह शरीर नहीं परन्तु ब्रह्म हूं, इस प्रकार की ब्रह्मरूप भावना से सभी वृत्तियां नाश हो जाती हैं। और जब सभी कामनाएं मूल सहित नष्ट हो जाता है। तो मनुष्य मरण धर्म वाला होते हुय भी मरण रहित हो जत्ता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

श्री अथर्वेंदीय मुंडकोपनीषद् द्वितीय खंड मन्त्र ३

धनु गृहित्वौ पनिषदं महास्त्रंशरं।
ह्युपासा निशितं सन्धयीतं॥ ९८॥
आयम्य तभ्द्रावगतेन चेतसालक्ष्यं।
तदेवाक्षरं सोम्यविध्धि॥ ९९॥

उपनिषदों में प्रसिद्ध जो शस्त्र धनुष रूप है उसको लेकर ध्यान से तेज किये हुए बाण को लेकर सन्धान करना। उस ब्रह्म को लक्ष्य में लाने के निमित्त चित्त को इन्द्रियो के सहित विषयों से निबृत्त करना—प्रणव ब्रह्म है, ध्यान करने वाले को प्रणव के जाप से चैतन्य का जो प्रतिबिंब स्फुरित होता है वह आत्मा है। इस प्रकार का अनुसंधान प्रणव रूपी धनुष में बाण है; इस प्रकार का अनुसंधान करना लक्ष्य वेध है।९८।९९।

द्वितीय मुंडक खंड २

प्रणवोधनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्य मुच्यते।
अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ १००॥

प्रणव धनु है, आत्मा शर और उसका लक्ष्य ब्रह्म है, अप्रमत्त होकर लक्ष्य वेधन करे तो सोधा होवे अर्थात् शरकी तरह हो जावे॥ १००॥

तृतिय मुंडक (प्रथमोखंड)

सत्येन लभ्य स्तपसा ह्येष आत्मा ।
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रोयं ।
पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः ॥१०१॥

नित्य आत्मा सत्य, तप, ज्ञान और ब्रह्म चर्य से लभ्य है अन्तः शरीर में दोष रहित यति ज्योतिर्मय उस शुभ्र आत्मा को देखते हैं ॥ १०१ ॥

न चक्षुषा गृह्यते वापि वाचा ।
नान्यैर्देवे स्तपसा कर्मणावा ॥
ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्वस्ततस्तुतं ।
पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ १०२ ॥

न चक्षु, वाणी न दैव कर्म न तप से ही आत्म तत्त्व दीखता । निष्कल ध्यान करने वाला सत्व शुद्ध व्यक्ति ही ज्ञान से उसे देख सकता है ॥ १०२ ॥

ज्ञान भण्डार

भाग ४

यं यं लोकं मनसा सं विभाति विशुद्ध ।
सत्वः कामयते यांश्च कामान् ॥
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां ।
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥१०॥१३२॥

निर्मल अन्तःकरण वाला पुरुष मनसे जिन २ लोकों और भोगों की इच्छा करता है वह उन भोगों और लोकों को प्राप्त करता है। आत्मज्ञ पुरुष उन लोकों और भोगों को जीत लेता है, अतः विभूति चाहने वाले को आत्मज्ञ पुरुष को पूजना चाहिये १०।१३२

अथ अथर्ववेदीय गौड़ पाद कारिका

वैतथ्य प्रकरण—२

निस्तुतिर्नि नमस्कारो निःस्वधाकारएवच ।
चला चल निकेतस्य यति यद्रिच्छिकोभवेत्॥३७॥१३३॥

स्तुति से रहित, नमस्कार से रहित एवं स्वधाकार से वर्जित चल अचल घर वाला यति याद्रिच्छिक होता है ॥३७॥१३३॥

नाकाशस्य घटा काशो विकारा वय वौ तथा।
नैवात्मनः सदाजीवो विकारापयवौ तथा ॥७॥१३४॥

जिस प्रकार घटाकाश आकाशका विकार तथा अवयव नहीं है, उसी प्रकार जीव, आत्मा का विकार और अवयव नहीं है ॥ ७ ॥ २३४ ॥

अथर्ववेदीय माण्डुक्योपनिषद्का

गौड़ पाद कारिका का तृतीय प्रकरण।

आत्म सत्यानु बोधेन न संकल्पयते यदा।
अमनस्तां तदायाति ग्राह्याभावे तदग्रहम् ॥३२॥१३५॥

जब सत्य रूप आत्मा का अनुभव होने पर मन संकल्प करना छोड़ देता है, तब अभाव में ग्रहण रहित मन निरोधावस्था को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ १३५ ॥

लीयते हिसुषुसे तन्निगृहितं न लीयते।
तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः ॥३५॥१३६॥

जिसमें सुषुप्ति में तल्लीनता होती है, और जो निग्रह करने पर भी लीन नहीं होता। वही निर्भय ज्ञान प्रकाश सर्व व्यापक ब्रम्ह है ॥ ३५ ॥ १३६ ॥

अद्वैत प्रकरण ।

यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ।
अनिङ्ग न मनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ॥४६॥१३७॥

चित्त जब तक सुषुप्ति में लीन नहीं होता एवं जब तक विक्षेप युक्त नहीं होता तब तक निवात स्थान में स्थित दीप शिखा की तरह ब्रह्म संपन्न नहीं होता ॥ ४६ ॥ १३७ ॥

यजुर्वेद वाजसेयी संहितायां ईशावास्योपनिषद्

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥६॥१३८॥

जो सब जीवों को आत्मा में जानता है एवं सर्व भूतों में स्वात्मा को देखता है वह संशय को प्राप्त नहीं होता ॥६॥१३८॥

सपर्य्यगाच्छुक्र पकायमब्रण ।
मस्नाविरऽशुद्धमपविद्धम् ॥
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भुर्यथा तथ्यतोऽर्थान् ।
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः ॥ ८ ॥ १३९ ॥

पहिले कहा गया है कि यह सम्पूर्ण जगत ईश्वर का स्वरूप है । जो ऐसा जानता है उसका आवरण और विक्षेप दूर हो जाता है । जैसे जीव में आत्म तत्व है । इसलिये वह भी शरीर वाला है ॥ ८ ॥ १३९ ॥

अथ मुंडकोपनिषद् तृतीय मुंडक मंत्र ३

यदापश्यः पश्यतेरुक्मवर्णं कर्तारि ।
मीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिं तदा ॥
विद्वान्पुण्य पापे विधूय निरंजन ।
परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥ १४० ॥

जो सबका ईश्वर और हिरण्य गर्भ का उत्पत्ति स्थान है उस स्वयं प्रकाश परम पुरुष को जब जीव स्वात्म भाव से मानता है तब वह पाप पुण्य से छूट कर निरंजन परम अद्वैत रूप को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ १४० ॥

मंत्र ५

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास
योगाद्यतयः शुद्ध सत्वाः ॥
ते ब्रह्मलोकेषु परान्त काले परामृताः ।
परि मुच्यंति सर्वे ॥ ५ ॥ १४१ ॥

जिनका सर्व कर्मों के त्याग से शुद्ध अन्तःकरण हो चुका है और जो वेदान्त विचार से परि पक्व बुद्धि वाले हैं वह सब जीवन मुक्त हैं ॥ ५ ॥ १४१ ॥

अथर्व वेदीय मुडको पनिषद् द्वितीय मुंडक

यस्मिन्द्योः पृथिवी चान्तरीक्ष पोतं
मेवः। सहप्राणैश्च सर्वैः ॥
तपे वैकं जानथ आत्मान मन्या वाचो।
विमुञ्चथ अमृतस्यैव सेतुः ॥ ५ ॥

जिसमें स्वर्ग पृथ्वी और प्रवेश प्राप्त हैं और सर्व करणों सहित जहां मन स्थित है वही एक आत्मा है। इस लिये साधन सहित सर्व कर्मों का त्याग करो ॥ ५ ॥

मनुस्मृति

वेद स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
ऐतत् स्यत्तु विध प्राहु साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्॥१॥

वेदस्मृति तथा सदाचार जिनको प्रिय हैं वह धर्मात्मा हैं ॥१॥

वेधाद्वेधा भ्रमन्चके कान्ता सुकनकेशुच
तासु तेषु अना सक्त साक्षात्भर्गो निराकृति ॥

ब्रह्मा ने संसार में दो चक्र बनाये। एक स्त्री रूपी दूसरा स्वर्ण मय। अतः स्त्री रूपी तथा स्वर्ण मय चक्र से रहित व्यक्ति साक्षात्परम् पुरुष स्वरूप है।

न बाह्य देवार्चनं श्रुति ॥

वाहर देव पूजा नहीं होतो मनमें ही होती है।

विश्वेश्वर स्तुसुधिया गलि तेपि भेदे।
भावेण भक्ति सहितने समर्पनीय॥
प्राणेश्वर प्रियतमा मिलितेपि चित्तो।
चैलान्च लप्य वहितने निर्पक्षणीयाः॥ १॥

अपने में और विश्वेश्वर में भेद नष्ट होने पर भी भक्ति भाव से ही पूजा करनी चाहिये। जैसे कि अपने प्रियतम प्राणेश्वर से चित्त मिल जाने पर भी स्त्री वस्त्र का आवरण करती हो है

नह्यं मयानि तोर्थानि नदेवा मृच्छिला मया।
ते पुनन्तित्यु :कलिभै दर्शना देव साधवः॥

जिसको जलमय तीर्थ और शिलामय मुर्ति शुद्ध नहीं कर सकते वह साधु के दर्शन मात्र से शुद्ध हो जाता है।

है माद्रेतु गयारुह्य केदारेश्वर दशने।
तस्मात् शत गुणं पूण्य काशी केदारदर्शनात्॥

हिमालय की चोटी पर चढकर केदार नाथ के दर्शनों को अपेक्षा काशी में केदार नाथके दर्शनों का सौ गुणा फल है।

आश्रमे यतिर्यस्य मुहुर्त मपि तिष्ठते।
किंतस्थानेन शून्येन कृतकृत्योभि जायते॥

यदि घर में क्षण भी यति ठहरा जाय तो उसके प्रभाव से वह स्थान कृत्य कृत्य हो जाता है ॥

संचितं यद्गृहस्थेन पाप मरणान्तिकं ।
सनिर्वहति तत्सर्वं एकरात्राश्रितोयति ॥

गृहस्थ ने मरण परयन्त जितना पाप संचित किया हो वह एक रात्रि यति के निवास से नष्ट हो जाता है ॥

संन्यासीनां च योधर्मो मन्मुखाच्च निशामय ।
दण्डग्रहेण मात्रेण नरोनारायणो भवेत् ॥

संन्यासियां का धर्म मेरे मुख से सुनो । कि दण्ड मात्र धारण करने से नर नारायण हो जाता है ॥

संन्यासीनां पाद स्पर्शात्सिद्यपूता वसुन्धरा ।
सद्यपुनातिर्थानिवैष्णवस्ययथा ब्रज ॥

संन्यासियों के पादस्पर्श से पृथ्वी शीघ्रही पवित्र हो जाती है । स्नान से तीर्थ वैसे ही पवित्र होजाते हैं जैसे वैष्णवव्रज से ॥

संन्यासीनां च स्पर्शेननिष्पापो जायतेन् ।
संन्यासीनां भोजयित्वाश्चाश्चमेध फलं लभेत् ॥

संन्यासी के स्पर्श से मनुष्य निष्पाप हो जाता है, और संन्यासि के भोजन कराने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।

नत्वा च कामनो द्रष्टा राज सूर्यफलं लभेत् ।
फलं संन्यासीनां तुल्यं यतीनां ब्रह्म चारिणाम् ॥

संन्यासी को नमस्कार करने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है और संन्यासियों के बराबर ही यति ब्रह्मचारियों का भी फल है ।

संन्यासीयाति सायान्हे क्षुधितो गृहीणां गृहम् ।
सदन्नं शाकृदन्नंवादाद्यं नैवं वर्जयेत ॥

रात्रि में यदि भूखा संन्यासि घर में आ जाय तो रूखा सूखा जो कुछ हो उसे खिलाये बिना न जाने दे ॥

न याचते च मिष्टान्नं न कुर्यात्क्षेपमेव च ।
नधनं गृहणं कुर्यात् कदासा निरीहतः चेष्टाविना ॥

न मिष्टान्न मांगे, न क्रोध करें न धन लेना चाहिये केवल ईश्वर का ही स्मरण करे ॥

शीत ग्रीष्म समानश्च लोभमोहविवर्जितः ।
तत्रस्थित्वैकरात्रं च प्रातरन्य स्थलं व्रजेत् ॥

गर्मी सर्दी के समान माने एवं लोभ मोह का त्याग कर वहां एक रात्रि रह कर सुबह उठ कर दूसरी जगह चल दे ।
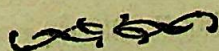
(ब्रह्मपुराण अध्याय ७)

यान मारोहणं कृत्वा गृहीत्वा गृहीणोधनं।
ग्रहं कृत्त ग्रहोरभ्यात् च धर्मों पतितो भवेत् ॥

गृहस्थी का धन लेकर सवारी में चढ़ने वाला, बढ़िया बंगले बनाकर रहने वाला पतित होता है ॥

देवतांप्रतिमात्रद्दष्ट्वायतीन्द्रष्टेक दण्डिनम् ।
प्रणिपातमकुर्वाणोरौरवंनरक ब्रजेत् ॥

देव प्रतिमा तथा साधु को देख कर जो प्रणाम नहीं करता वह घोर नरक में गिरता है ॥

कुलं पवीत्रं जननी कृतार्था येषां कुल ।
संन्यसनाम धेयम् ॥ ॥

उसका कुल पवित्र हो गया जननी कृतार्थ हो गई जिसके कुल में कोई संन्यासी नामधारी हो गया ॥

अन्यश्चेन्नशपेद्दोधर्मात्प्रेणावा चांतिकिलिविवषं ।
तथापितं च फलतिधर्मस्तंहंतीनारद ॥

किसी को शाप देना नहीं। और न किसी से प्रेम वाणी से बोलना उससे भी पाप लगता है, फिर भी धर्म फलता है अतः किसी को न देना शाप न आशिर्वाद देना ॥

मुण्डको पनिषद् प्रथम मुंडक दुसरा खंड

तपः श्रद्धे येह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता।
विद्वांसो भैक्ष्य चर्यां चरन्तः ॥
सूर्य द्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः।
स पुरुषोह्यिव्ययात्मा ॥ १४२ ॥

जो पुरुष वाणप्रस्थ आश्रम में स्थिर होकर वनमें एकान्त में रहता है अपने विदित धर्म एवं हिरण्यगर्भादिकों की वासना करता है तथा जो गृहस्थाश्रम में रहकर ही पराविद्या की उपासना करता है एवं जो संन्यासि भिक्षा चरण मरके कर्मोपासना करते हैं वह उत्तरायण मार्ग से देवस्थान को प्राप्त होते हैं।

संन्यास प्रकरण विद्वत् संन्यास

द्रश्यैर्न मम संबंधः इति निश्चित्य शीतलः।
कश्चित्कर्म व्यवहारस्थः कश्चिद ध्यान परायणः ॥१४३॥

संसार के सभी दृश्यमान पदार्थों से मेरा सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार का जिसका दृढ़ निश्चय है वह, चाहे किसी समय व्यवहार परायण रहे या कभी ध्यान में रहे। उसके लिये सब समान है॥ १४३।

देहं च नश्वर मवस्थितं मुत्थितंवा।
सिद्धा नेपश्यति यतोध्यगम स्वरुपम् ॥

दैवा दुपेतम भदैववशा दुपतें ।

वासो यथा परिहसं मदिरामदान्धः ।। १४४ ।।

जैसे मदिरा के नशे में मत्त पुरुष अपने कटि वस्त्र के बारे में भी यह नहीं जानता कि वह वहां है या नहीं, उसी प्रकार यति पुरुष यह नहीं जानता कि वह यह भी नहीं जानता उसका नाशवान शरीर योगासन से उठा हुआ है या स्थित है। दूसरी जगह गया है या वापस अपने स्थान पर आगया है। कारण वह अपने अभिन्न स्वरुप को प्राप्त हो गया है ।
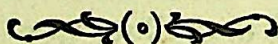
तत्त्वनो नीचोड़

धर्मो रक्षति रक्षितः ।

जो धर्म का रक्षा करता है उसको रक्षा छाइ करता है ।

जान्वोर्ध्यं मधोनाभे परिधायकर्मांबर ।

द्वितियं ह्युत्तरं वासः परिधाय गृहा तजोत् ॥ १४५ ॥

जानू के ऊपर नाभी के नीचे एक वस्त्र धारण करता एक उत्तरीय वस्त्र लेकर घर से निकल जाय ।

भिक्षाटनं जपः शौचं, स्नानं, ध्यानं, सुरार्चनम ।

कर्तव्यानि षडेतानी सर्वथा नृप दण्डवत् ।। १४६ ।।

भिक्षा वृत्ति, जप, शौच, स्नान, ध्यान और सुरार्चन ये छ बातें राजाज्ञा के तुल्य अवश्य करनी चाहिये।

एतानियति पात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥१४७॥

यह यति कर्म मनु भगवान ने स्वयं कहे हैं॥

अलाबुदारुपात्रं वा मृण्मयं वैणवं तथा।

तुम्बा, लकड़ी, मिट्टी, या बांस किसी एक का पात्र रक्खे॥

रसायनं क्रिया वादं ज्योतिषं क्रिय विक्रयं।

विविधानि च शिल्पानि वर्जयेत् पर दारवत् ॥१४८॥

रसायन, क्रिया, वाद, ज्यौतिष, क्रय, विक्रय तथा अन्यान्य शिल्प कलाओं को परदारा की तरह त्यागदे।

ब्रह्मनास्ति तियो ब्रुयात् द्वेष्टि ब्रह्म विचयः।

अभूतं ब्रह्म वादीच त्रयस्ते ब्रह्म घातकाः ॥ १४९ ॥

जो ब्रह्म नहीं है ऐसा कहे तथा जो ब्रह्म वेत्ता से द्वेष करे ब्रह्म सम्बन्धी करे यह दोनों ब्रह्म घातक हैं।

तिर्थानि तोय पूर्णानि देवान् पाषाण मृण्मयात्।

योगिनो न प्रपद्यंते आत्म ज्ञान परायणः ॥ १५० ॥

तीर्थों के जल मिट्टी या पत्थर की देव प्रतिमाओं की शरणमें योगी न हो क्योंकि वह स्वयं ब्रह्म परायण है।

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनिनां हृदि दैवतं ।
प्रतिमा स्वल्प बुद्धिनां सर्वत्र विद्धितात्मना,म् ॥१५१॥

अन्य जातियों का देव अग्नि है । मुनियों का देवता हृदय में है । स्वल्प बुद्धि वालो के लिये प्रतिमा में तथा परिपक्व बुद्धि वालों का देव सर्वत्र है ।

सर्वत्रा वस्थितं शान्तं न प्रपद्ये जनार्दन ।
ज्ञान चक्षु विहीन त्वादंध सूर्य मिवोद्दितम ॥१५२॥

जिस प्रकार अंधा आदमी उदय होते सूर्य को नहीं देखता उसी प्रकार ज्ञान चक्षु से रहित पुरुष सर्व प्रेरक सर्व व्यापक ईश्वर को नहीं देखता ॥

कुटुम्बं पूत्रदारांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
यज्ञं यज्ञोपवित्तं च त्यक्त्वा गूढवरेन्मुसनत्सुजानीः १५३

कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री, और सर्व वेदाङ्गों को यज्ञ और यज्ञोपवीत को छोड़ मुनी को गुप्त फिरना चाहिये ।

जानन्नपि च मेधावी जडवल्लोक माचरेत् ॥१५४॥

बुद्धिमान जानते हुवे भी लोक में मूर्ख की तरह आचरण करे ॥

अशवाया पिपासे प्राणस्य शोक मौहौ ।
मनसो जरा मरणे शरीरस्य ॥ १५५ ॥

खाना पीना यह प्राण का धर्म है शोक मोह मनके और वृद्धावस्था और मरण यह शरीर के धर्म हैं ॥

न वे मान च मौनं च सहितौ वसतः सदाः
अयमानंस्यविषयोह्यरयोद्वे दौनस्यं तद्विदुः ॥१५६॥

मान और मौन एक जगह नही रहते, क्यों कि मान लाक का विपय है और मौन परलोक को है विषय तत्त्ववेत्ता ऐसा कहते हैं ॥ १५६ ॥

आह्नोमानार्थं वासान्साचापिपरिपंथिनी ॥
ब्राह्मो श्री सदुभाः श्रीर्हिप्रज्ञाः ह्री निनक्षत्रियः १५७

हे क्षत्रिये ! लक्ष्मी के सहवास से सुख होता है तथा मान मिलता है लेकिन वह लक्ष्मो परलोक का नाश करने वाली है तथा ब्राह्मी लक्ष्मी अज्ञानी को मिलनी कठिन है ॥ १५७॥

इमम् गुहा समाहार मन्मत्वेन्येनपश्यत ।
अंतः शीतलतायां सौसमाधिरिति कथ्यते ।१५८।

इस गुफा समुदाय को अनात्म भाव से देखने वाले अन्दर की शितलता को समाधि कहते हैं ॥ १५८ ॥

जलस्यचलनादेव चंचलत्वेयथारवेः
तथाहंकार संसारा देव संसार आत्मनः

तस्मादन्यगतावर्णा आद्यमा अपि केशव।
आस्मन्य सिपिलाएवआत्या तेनास्मवेदिनः १५९

जल की चंचलता से जैसे सूर्य की चंचलता दिखायी देती है वैसे ही सम्पूर्ण संसार अहंकार का विषय है अतः इसका तादात्मा ध्यास से आत्मा मिथ्या भासता है ॥ १५९ ॥

वासनाक्षय विज्ञानमनो नाशोमहामते ।
समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदाइमे ॥१६०॥

हे महामते ! वासना क्षय, मनोनाश के पश्चात् तत्त्व ज्ञान दीर्घ काल पर्यन्त सेवन करने से वह फल दाता होता है ॥१६०॥

तिर्थेश्वयचग्रहे शनष्टस्मृतिरपिस्यजेत् देहं ज्ञान ।
समकालयुक्तः कैवत्मां यातिहत शोकः ॥१६१॥

मरण के समय जिस पुरुष को स्वरूप विस्मरण हो जाता है ऐसा पुरुष कभी तीर्थ में स्वपच के घर खाता हो यदि उसे ज्ञान हो गया तो वह मुक्त तत्काल हो जाता है ॥ १६१ ॥

तस्माद्राधवयत्नेन पौरुषेणविवेकिना ।
भोगेच्छांदूरतस्त्यक्तात्रयमेतत्स श्रयेत् ॥१६२॥

हे राम ! इसलिये विवेकी पुरुष को प्रयत्न पूर्वक भोगेच्छा का सर्वथा त्याग करके तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, मनोनाश इन तीनों का आश्रय लेना चाहिये ॥१६२॥

प्रारब्धकर्म वेगेन जीवन्मुक्तो यदाभवेत् ।
कंचित्काल मथारब्धकर्म बंधस्य संक्षय ॥
निरस्तातिशयानंदं वैष्णवं परमं पदं ।
पुनरावृत्ति रहितं कैवल्यं प्रतिपद्यते ॥१६३॥

अधिकारी पुरुष जब जीवन मुक्त होता है । तो प्रारब्ध कर्म वेग का नाश करके आनन्द का अन्तिम स्थिति पुनरावर्तन रहित वैष्णव परम पद को प्राप्त होता है ॥१६३॥

यविनिद्राजितश्वासासंतुष्टा संतुष्टाः संतेन्द्रियाः ।
ज्योति पश्यतियूंजिनातस्मे विद्यात्मने नमः॥ १६४॥

निद्रा तथा प्राण को जीतने वाला संतोषी और इन्द्रियों का संयमन करने वाला योगी ही ज्योति स्वरूप आत्मा को साक्षात् रूप से देखता है ॥१६४॥

रागोलिंगय बोधस्याचित्तव्यायामभूमिषुः ।
कुत शाद्वलनातस्ययस्याग्निकोटरेंतरो ॥१६५॥

चित्त रूपी व्यद्ध्याम भूमि में राग अज्ञान का चिन्ह है । भला जिस वृक्ष की कोटर में हरवक्त आग जलती है उसमें गीलापना आवेगा कहां से ॥१६५॥

सपरि करेवर्चस्केदोषतचावधारित ॥
यादिदोषंवदेतस्मैकिनत्रो चरितु भवेत् ॥१६६॥

नद्धन्स्थूले तथा सूक्ष्मेदेहेत्यक्तेविवेकतः ।
यद्दिदोषं वदेताभ्यां किंतत्रविदुषोभवेत् ॥१६७॥

शोक हर्ष, भय, क्रोध, लाभे मोह स्पृहा ययः ।
अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्चनात्मनः ॥१६८॥

मल मूत्रादिक जो मनुष्य के दोष रूप निश्चय किये हैं उनके विषय में जो कोई दोषों को कथन करे तो उसमें विष्टादिक त्याग करने वाले की क्या हानि इसी प्रकार स्थूल दृष्टि द्वारा सूक्ष्म का त्याग करने के बाद यह दोनों शरीर मैं नहीं यह दृढ़ होने के बाद इन दोनों शरीर को दोषयुक्त देखे तो विद्वान को इसमें क्या हानी । शोक, हर्ष, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा, आदि तथा जन्म मृत्यु और अहंकार के विषय में प्रतीति होती है यह आत्मा का धर्म नहीं ॥१६६॥ ॥१६७॥ ॥१६८॥

यन्निंदयायदिजनः पर्मतोष येति नन्व मयन्त सुलभो ।
यमनुग्र होमे श्रेयोर्थिनोहि पुरुषाः परितुष्टि मीतीयोग ॥

जो कोई पुरुष मेरी निन्दा से ही संतोष प्राप्त करता हो तो बिना परिश्रम के मेरे ऊपर एक आदमी की बड़ी भारी कृपा हुई ।

नित्यकर्म परित्यज्य वेदांत श्रूवणं विना ।
वर्तमानस्तु संन्यासो स्तयेव न संशय ॥

वेदान्त श्रवण बिना नित्य कर्म छोड़ देने से संन्यासी होने पर भी निसंदेह मनुष्य पतित हो जाता है।

अथ संन्यास प्रकरण

मुख जाना मयं धर्मो यद्विष्णोलिंग धारणम्।
बाहु जातोरुजातानाम् नायं धर्म प्रशस्यते ॥१६४॥

मुख से उत्पन्न ब्राह्मणों का यह धर्म है कि वह संन्यास ले। वैश्य और क्षत्रियका यह धर्म है कि वह संन्यास न ले॥

जिताहारोथवा वृध्धो विरक्तो व्याधितोऽपिवा।
यतिर्नगच्छेतं देवं यत्र स्यात्प्रतिमास्त्रियः॥ १६५॥

जिसने अहार को जीत लिया हो ऐसा वृद्ध, यति भी विरक्त अथवा पीड़ित हो जिस मन्दिर में स्त्री को प्रतिमा हो वहां न जाय॥

परिचित देशं चाण्डाल वाटिकावत्
परित्यजेत् ॥ श्रुति ॥ १६६॥

परिचित देश को चाण्डालकी बगिया की तरह त्याग दे॥

पतं त्येव ध्रुवं भिक्षुयस्या भिक्षोर्द्वयं भवेत्॥
धी पूर्व करते उत्सर्गोद्रव्य संग्रह एवच ॥ १६७॥

जिस भिक्षुकी दो भिक्षायें हो जाती हैं वह अवश्य पतित होता है। एक तो बुद्धि पूर्वक वीर्य नाश, तथा दूसरी द्रव्य संग्रह से ॥

शिखा सूत्र परित्यागी वेदान्त श्रवणं विना ।
विद्यमानेपि संन्यासे पतत्येव न संशय ॥ १६८ ॥

वेदान्त श्रवण बिना शिखा सूत्र परित्यागो संन्यासी आश्रम में रहने वाला पतित ही है इसमें संशय नहीं ।

यस्याभिमानं मोक्षेपि देहेपि ममता तथा ।
न वा ज्ञानी न वा योगी केवलं दुःख भागसौ ॥१६९॥

जिसको मोक्षका अभिमान हो और मोह में ममता हो न वह ज्ञानी है न वह योगी है केवल दुःख भागो ही है ॥

प्रभवं सर्व दुःखानामाश्रयं सकला पदाम् ।
आलयं सर्व पापानां संसारं वर्जयेत्प्रिये ॥ १७० ॥

हे प्रिये ! सर्व दुख प्रदाता सब आपदाओं के स्थान एव पापों के घर इस संसार को त्यागो ॥ १७० ॥

अश्वालंभं गवालंभं संन्यासं पलं पैत्रिकं ।
देवरश्च सुतोत्पत्तिकलौ पंच विवर्जयेत् ॥ १७१ ॥

अश्वमेध, विवाह के समय वरका गौ चर्म पर बैठना, संन्यास, तथा मांससे पिंडदान, और देवर से सुतोत्पत्ति करना कलियुग में यह पांचो बातें विवर्जित हैं ॥ १७१ ॥

एक कालं चरेत् भैक्ष्यं नप्रसज्जेत विस्तरे ।
भिक्षायां प्रसक्तोहिं विषयश्चापि सज्जति ॥ १७२ ॥

एक काल भिक्षा करे विस्तर पर न सोवे भिक्षा से प्रसन्न होना भी विषयासक्ति कराता है ॥ १७२ ॥

घृणाम् शंका भयम् लज्जां जुगुप्सां चेति पंचमी ।
कुलं जातिश्चमानं च अष्टपाश इतिस्मृता ॥ १७३ ॥

घृणा, शंका, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, और जातिका अभिमान इन आठों को आठ पाश समझो ॥ १७३ ॥

सन्य सन्तं द्विजं द्रष्ट्वा स्थानात् चलति भास्कर ।
एषमे मंडलं भित्वा ब्रह्म लोके प्रयास्तति ॥ १७४ ॥

संन्यास लिये ब्राह्मणको देख कर सूर्य अपने स्थान से चलित होता है, कारण कि यह ब्राह्मण हमारे लोक को भेद कर ब्रह्म लोक में जायगा ॥

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् सूर्य मंडल भेदिनै ।
परिव्राट योग युक्तस्य युध्ये योभिमुखाहतो ॥ १७५ ॥

योग युक्त परिव्राजक और रणमें मरा क्षत्रिय हे राजन ! यह दोनों सूर्य मंडलको भेदकर जाते हैं ॥ १७५ ॥

यति निद्राजित श्वासाः संतुष्टा संयतेंद्रियाः ।

ज्योतिः पश्यतियुंजीनास्तस्मै विद्यात्मनेनमः ॥१७६॥

निद्रा तथा प्राणका जीतने वाले सन्तुष्ट, जितेन्द्रिय जो योगी आत्म साक्षात् करता है उस विद्या स्वरूप आत्मा को नमस्कार है ॥ १७६ ॥

अथ यति पूजा महात्म्य

एकदंडी त्रिदण्डि वा शिखी मुंडि तथैव च ।

काषाय मात्र धरोऽपियतिः पूज्यो युधिष्ठिरेति ॥ १ ॥

एक दण्डी त्रिदण्डी अथवा शिखी मुण्डित, हे युधिष्ठिर ! काषाय वस्त्र धारी कोई भी हो वह पूज्य है ॥ १ ॥

अत्रिः चतुर्विधोभिक्षुकः स्यात् कुटीचक ।

बहुदकौ हंस परमहंसस्य यो यः पश्चात् सउत्तमः ॥२॥

अत्रि कहते है कि चार प्रकारके भिक्षुक होते हैं १—कुटीचक २—बहूदक ३—हंस—४—परमहंस । इनमें पिछला भिक्षुक सबसे अच्छा है ॥ २ ॥

भिक्षाकाफल—ब्रह्मचारी सहस्त्रं च वानप्रस्थ शतानि च

ब्राह्मणानान्तु कोट्यास्तु यतिरेकोविशिष्य ॥३॥

सहस्रों ब्रह्मचारी सैंकड़ों वानप्रस्था करोड़ों ब्राह्मणों से एक यति विशेष महत्व रखना है ॥ ३ ॥

साक्षाद्विष्णो कृतिविप्रौनमस्योऽयं सुरासुरैः ।
वर्णाश्रमैः समस्तैय परम् हंसोद्विजोत्तमा ॥ ४ ॥

ब्राह्मण साक्षात विष्णु स्वरूप हैं उपकी सुर असुर सब वन्दना करते हैं तथा हे द्विजोत्तम ! उसी प्रकार सब आश्रमों में परम हंस संन्यास उत्तम है ।

द्वे रूपे वासुदेवस्य चलञ्चाचलमेव च ।
चलं सन्यासोनो रूपमचलं प्रतिमादिकं ॥ ५ ॥

भगवान विष्णुके चल अचल दो स्वरूप हैं, चल संन्यासी रूप और अचल प्रतिमादिक हैं ॥ ५ ॥

विष्णु लिङ्गा श्रितं विप्रं द्रष्ट्वा चैव नराधमाः ।
स्थिता शय्यासने यावेन त्यजन्ति विमोहिता ॥ ६ ॥

विष्णुलिङ्ग (दण्ड) को देख कर जो नीच स्व आसन शैया नहीं त्यागता वह नष्ट होता है ॥ ६ ॥

अभ्युत्थानं नमस्कारं प्रसन्न वदनादिकं ।
कर्मणा मनसा वाचा येन कुर्वन्ति सत् क्रियाम् ॥७॥

और हट कर अभ्युत्थान नमस्कार कायिक, वाचिक, मानसिक प्रसन्न मुख जो सत्कार नहीं करते ॥ ७ ॥

सदाचार परिभ्रष्टास्ते पापायान्त्यधोगतिम् ॥ ८ ॥

सदाचार से परिभ्रष्ट वे पापी अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥८॥

स्मृतिर्नारायणी हन्ति प्राणीनां पाप संचयन् ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेणनमो नारायणात्मना ॥ ९ ॥

नारायणी स्तुति प्राणियों के संचित पाप नष्ट करती है अष्टाक्षर मंत्र ॐ नमो नारायण से ॥९॥

आसनं शयनं यानं यतिंदृष्ट्वा न यस्त्यजेत् ।
समृतोऽपि हि दुष्टात्माश्वयोनावेवजायते (जाबालस्मृति) ।१०।

आसन, शैया, वाहन यति को देखकर जो नहीं छोड़ता वह दुष्टात्मा निःसन्देह मरने के बाद कुत्ते की योनी में जाता है ॥ १० ।

यतिभ्यः श्रद्धयादद्याद्भिक्षां पात्रप्रपूरणीम् ।
नक्षीयते च तत्तस्य कल्पकोटि शतैरपि ॥ ११ ॥

श्रद्धा पूर्वक भक्ति का भिक्षा पात्र पूर्ण कर देना चाहिये। उसका फल कोटि कल्पों तक भी क्षीण नहीं होता है ॥११॥

भिक्षा काले यतिर्यस्य गृहं प्रापायेदाभवेत् ।
देयाः सर्वे रसास्तस्मै आत्मनः शुभ मिच्छता ॥१२॥

यदि अकाल संन्यासि घर पहुंच जाय तो कल्याणकाङ्क्षी को चाहिये वह उन्हें सर्व प्रकार संतुष्ट करे ॥ १२ ॥

पूरयित्वा हविष्येण यतये यः प्रयच्छति ।
सपित्रिन् तारयेत् पूर्वानपिये नरकाश्रितः ॥१३॥

जो यति को हविष्य भोजन कराता है वह अपने पूर्व पितरों को और भी नरक में गये हुए पितरों का उद्धार करता है ॥१३॥

यावन्ति यति पात्राणि यावच्चान्नं प्रयच्छति ।
तावद्वर्ष सहस्राणि स्वर्गे लोके महायते ॥ १४ ॥

जितने यति पात्र हैं और जब तक अन्न दिया जाता है उतने सहस्र वर्ष स्वर्ग में कीर्ति प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

न क्रिया गोत्र माचारं शौचा शौचं शुभा शुभम् ।
पृच्छेन्माधुकरींयाते कुलंशीलं श्रुतंयतेः ॥ १५ ॥

क्रिया, गोत्र, आचार, शौच, अशौच, शुभ, अशुभ, कुल, शील आदि मधुकरी लेने वाले से न पूछे ॥ १५ ॥

अदुष्टा पतितं विप्रंयतिंयः परिवर्जयेत् ।
सतस्य सुकृतं दत्वा दुष्कृतं प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥

जो ब्राह्मण अदुष्ट हुवा हो यदि वह यति को छोड़ दे, वह अपने सुकृत देकर दुष्कृत लेता है ॥ १६ ॥

तथैव च गृहस्थस्य निराशो भिक्षुको व्रजेत् ।
इष्टं दत्तं तपोधीतं सर्व मादाय गच्छति ॥ १७ ॥

इसी प्रकार गृहस्थ के घर से यदि भिक्षुक निराश लौट जाय तो वह उसकी तपस्या और विद्या ले जाता है ॥ १७ ॥

यतिर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते स्वयं हरी ।
हरीर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते जगत्त्रयं ॥ १८ ॥

जिसके घर यति भोजन करता है उसके यहां स्वयं हरी भोजन करते हैं, जिसके घर हरी भोजन करते हैं उसके यहां तीनों लोक भोजन करते हैं ॥ १८ ॥

बटोन्नु शत दत्तं स्यात गृहस्थेद्विगुणं स्मृतम् ।
वान प्रस्थे शत गुणं यतौदत्तमनन्तकम् ॥ १९ ॥

ब्रह्मचारी को दान देने का सौ गुणा फल, गृहस्थ को देने से द्विगुण, वान प्रस्थ को शत गुणा और यति को देने से अनन्त फल प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

कुर्यादां वसधं यस्तु दद्याद्या यतयोऽपिवा ।
ज्ञानी नेतु विशेषेण सयाति ब्रह्मणः पदम् ॥२०॥

जो दान दे तो यतिको दे उनमें भी ब्रह्म ज्ञानी को इससे दाता को ब्रह्म पद मिलता है ॥ २० ॥

यति हस्ते जलं दद्यात् भिक्षा दद्यात् पुनर्जलं ।
तद्भैक्ष्यं मेरुणातुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥२१॥

यति के हाथ में जल दे फिर भिक्षा एवं पुनः जल दे वह भिक्षा मेरु के समान एवं जल सागर के तुल्य बढ़ता है ॥ २१ ॥

चतुर्मास्यं यतीनान्तु यः कारयति धर्मवित् ।
सयात्यैहिकमैश्वर्य मामुष्मिकं सुख महत् ॥ २२॥

जो धर्मज्ञ यतियों का चातुर्मास्य करवाता है वह इस लोक में सुख प्राप्त कर परलोक में सुख पाता है ॥ २२ ॥

भिक्षां सत्कृत्य योऽद्यात् विष्णुरूपाय भिक्षवे ।
कृत्स्नांवा पृथिवि दद्याचो नतुल्यांनप्तफलां ॥ २३ ॥

सत्कार पूर्वक विष्णु रूप भिक्षुक के लिये जो भिक्षा देताहै, सम्पूर्ण पृथ्वी का दान भी उसके तुल्य नहीं होता ॥ २३ ॥

सर्वेषांमपरा धानां यति निन्दां गरीयसी ।
यतिर्नारायणः साक्षात् तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ २६ ॥

सब अपराधों में यति निन्दा का अपराध बड़ा है क्योंकि यति साक्षात् नारायण है अतः उनको बुराई त्याग दे ॥ २६ ॥

(शिव वाक्ये स्कन्द पुराणे)

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ससाध्या मरुतस्तथा ।
सकृद्भूक्तेन यतिना पितृदेवाः सवासवाः ॥२७॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, समस्त, पितृ देवता इन्द्र सहित यति को खिलाने से तृप्त होते हैं ॥ २७ ॥

सर्वेते तृप्तिमायान्तु दश वर्षाणि पञ्चच ।
जन्मयोनि सहस्रेषु पूजितस्तेन शंङ्करः ॥ २८ ॥

और वह सब १५ वर्ष तक तृप्त रहते हैं, और उसने कोटि सहस्र वर्षों शंकर पूजने का फल प्राप्त कर लिया ॥ २८ ॥

अपमाने च कृते तेषां देवाः सर्वेऽपमानिताः ।
सदोषंनिर्गुणं वापि यति क्वापि न कीर्तयेत् ॥ २९ ॥

यति के अपमान से सर्व देवताओं का अपमान होता है। यति निर्गुण हो या सगुण उसका कहीं बखान न करें ॥

अज्ञानातकितंयेद् यस्तु स याति नरकं ध्रुवम् ॥ ३० ॥

यदि अज्ञान से भी कहीं बुराई करदी तो वह निश्चय ही नरक गामी होता है ॥ ३० ॥

येनमन्ति यतिं दूराद्द दृष्ट्वा काषाय वासनं ।
राज सूय फलावाप्ति स्तेषां भवति पुत्रका: ॥ ३१ ॥

जो काषाय वस्त्र देखकर दूर से ही यति को नमन करते हैं, वह राज सूय यज्ञका फल प्राप्त करते हैं ॥ ३१ ॥

कौपिनाच्छादनं दण्डं वहिर्पसिश्च पादुके ।
यो ददाति यथा शक्त्या पूण्य तस्य न दाम्यहम् ॥
दशबाजी सहस्रन्तु मातङ्गानां शतत्रयं गोयुतस्य ।
सहस्रस्य फल माप्नोति मानवाः ॥ ३२ ॥

जो यति को कौपीन, वस्त्र, दण्ड, उत्तरीय, और खड़ाऊ यथा शक्ति देता है, उसका फल कहता हूँ। वह व्यक्ति दश हजार घोड़ों तीन सौ हाथी, चार सौ गऊ दानका फल पाता है ॥३२॥

कौपीनाच्छादन पात्रं भिक्षुवे यः प्रयेच्छति ।
वाजपेय समं पुण्य विष्णु मुद्दिष्य यत्कृतम् ॥ ३३ ॥

कौपीन, वस्त्र और पात्र जो भिक्षुक को देता है, विष्णु को उद्देश्य कर वाजपेय यज्ञका फल उसे मिलता है ॥ ३३ ॥

यतेर्दर्शन मात्रेण विमुक्त सर्व पातकात् ।
तीर्थ व्रतं तपोदान सर्वयज्ञ फलं लभेत् ॥ ३४ ॥

यति के दर्शन मात्र से ही सर्व पातक नष्ट हो जाते हैं सर्व तीर्थ, यज्ञ, व्रत, तप, दान आदि सबका फल मिलता है ३४ ॥

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शिनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूजयेत्यांघ्ररेणुभिः ॥ ३५ ॥

निर्पक्ष, शान्त, निर्वैर समदर्शि मुनि को प्रसन्न करने के लिये उसकी चरण रज लेनी और पूजा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

दुर्वृत्तो वासु वृत्तोवा मूर्खोवा पण्डितोऽपिवा ।
वेष मात्रेण संन्यासी पूज्यः सर्वेश्वरोयथा ॥ ३६ ॥

दुष्ट हो, या सज्जन, सदाचारो या व्यभिचारी मूर्ख हो या पण्डित संन्यासि वेष धारण मात्र से भगवान की तरह पूज्य है ॥ ३६ ॥

शूद्र हस्तेन योऽश्नीयात् पानीयं न पिबेत् यदि ।
अहो रात्रोषितो भूत्वापाद्वो पंचगव्येण शुद्धपि ॥ ३७ ॥

जिसने शूद्रके हाथका खा लिया हो या पानी पीलिया हो वह एक दिन रात्रि व्रत कर पंच गव्य पीने से शुद्ध हो जाता है॥३७॥

मानस वाचिकं पापं कायेनैव स्यकृतम् ।
तत्सर्वं नश्यते तूर्णं प्राणायाम त्रयेकृते ॥ ३८ ॥

कायिक वाचिक, मानसिक पाप अज्ञान से हो जांय तो तीन बार प्राणायाम से वह नष्ट हो जाता है ॥ ३८ ॥

चान्द्रायणन्तु सर्वेषां पापानां पावनं परम् ।
कृत्वा शुद्धि मवाप्नोति परमं स्थान मेवच ॥ ३९ ॥

चान्द्रायण व्रत सर्व पापों को नष्ट करने वाला है जिसके करने से पाप शुद्धि एवं परमपद प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

न भिक्षायां भवे दोषोनहि भिक्षा प्रतिग्रहा ।
सोमयानं समाभिक्षा तस्मा दहरहञ्चरेत् ॥ ४० ॥

भिक्षा लेने में न तो दोष और न भिक्षा प्रतिग्रह अपितु भिक्षा सोमपान के सदृश है इस लिये निशि दिन भिक्षा चरण करे ॥ ४० ॥

हविः प्रास्यतथा चम्य विराहारो भवेत् गृही ।
प्राश्या चम्य तथाभिक्षुः निरा होरो गृहे गृहे ॥४१॥

जिस प्रकार हवि प्राशन होता है उसी प्रकार भिक्षा को समझना । निराहार ही भिक्षा देने वाला हो एवं निराहार भिक्षा लेने वाला हो भिक्षा का प्राशन करने से वह घर निराहारी ही है ॥ ४१ ॥

गंगा वा सलिलं पुण्यं शालीग्राम शिला तथा ।
भिक्षाऽन्नं पंचगव्यं च पवित्राणि युगे युगे ॥ ४२ ॥

गंगा का पवित्र जल, शालिग्राम की मूर्ति, भिक्षा का अन्न तथा पंच गव्य सर्वदा युग युग में पवित्र ही हैं ॥ ४२ ॥

याचिता याचिता भ्यांच भिक्षाभ्यां कल्पयेत्स्थितिम ।
माधुकरं याचि तस्यात्प्राक्‌ प्रणितमयाचितम ॥४३॥

याचित और अयाचित २ प्रकार की भिक्षा होतीहै १–याचित जो मांगने पर मिले अयाचित बिना मांगे ॥ ४३ ॥

उषेवा–माधुकर पसं क्लप्तं प्राक्प्रणीत मयाचितम् ।
तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पंचविधं स्मृतम् ॥ ४४ ॥

उषना के मत से भिक्षा पांच प्रकार की है यथाः—माधुकरी, असंक्टल्प्त, प्राम्युणीत, अयाचित, तात्कालिक ॥ ४४ ॥

मनः संकल्प रहितान्गृहां स्त्रीन्पञ्च सप्तवा ।
मधुवदा हरणं यत्तन्माधुकरं पितिस्मृतम् ॥ ४५ ॥

मन संकल्प रहित पांच या सात ग्रहों से मधु की तरह उगे तेलो जाँय उन्हें मधुकरी कहते हैं ॥ ४५ ॥

शयामोत्थाप नात्माक्य प्रथितिं भक्ति संयुतैः ।
तन्माकंप्रणीत मित्याहु भगवान्नु ज्ञनामुखिः ॥ ४६ ॥

सोने से पहिले उठे भक्ति पुर्वक जाकर जो निमंत्रण दे और बाद में भोजन कराये उसे प्रात पुनीत कहते है ॥ ४६ ॥

भिक्षाटन समुद्योगात्प्रागे वापि निमन्त्रितं ।
अयाचितं तु तद्दैक्ष भोक्तव्यं प्रचुर ब्रवीत् ॥ ४७ ॥

भिक्षा करते हुवे भोगने से पूर्ण जो लिये खड़ा हो उसे अपाचित भिक्षा कहते हैं ॥ ४७ ॥

संन्यासी ब्रह्मचारी चपक्वान्नस्वा—
मिनावुभौन वारे भमदत्वातु भुक्त्वाश्चांद्रायणंचरेत्

सन्यासी और ब्रह्मचारी को दिये विना जो सज्जन भोजन कर लेंगे तो उन्हें पाप लगेगा और वह प्रायश्चित से शुद्ध होगा ॥ ४८ ॥

परमास्वाद युक्तेन मुक्तेन कुसुमेहितैः ।
ध्यानो पहारं एवास्मध्यानं ह्यस्यममोहितम् ॥४९॥

अपनी देह को अरणी तथा प्रणव को उत्तर अरणो ध्यानसे निर्भंधन करके अभ्यास के द्वारा छिपे हुवे देवको देखें ॥ ४९ ॥

ध्यान मर्घ्यं च शुद्ध सं वेदनत्त्मकम् ।
ध्यान सं वेदनं पूष्पं सर्वं ध्यान परंविदुः ॥५०॥

जिस प्रकार तिलों में तैल, दही में घी, श्रोत में जल एवं अरणी में जिस प्रकार अग्नि है इसी प्रकार शरीर में आला है तप के द्वारा प्रगट करनी चाहिये ॥ ५० ॥

पिनाते भै तरेणाय मास्मा लभ्यत्त एवनो ।
ध्याना प्रसाद् मायाति सर्वं भागे सुखश्रियः ॥५१॥

सर्व व्यापा आत्मा को चीर में घी की तरह कल्पित माना गया है ॥ ५१ ॥

अयमात्मा मुने भुक्ते देह रूपो ग्रहे यथा ।
ध्यानेना नेन सुमते निमेषां स्तुत्र योंदृश ॥
मूढोपि पूजयित्वेषं गो प्रदान फलं लभते ।
पूजयित्वा निमेषाणां शतमेक मिति प्रभुम् ॥५२॥

आत्म विद्या को तपका कारण माना गया है वही परम ब्रह्म है वही परंतु हन है ॥ ५२ ॥

अश्व मेधस्य यज्ञस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
पूजयित्वा स्वमात्मानं घटिकार्धं मितिप्रभुम ॥५३॥

आधी घड़ी भी श्रद्धा पूर्वक प्रभू की पूजा की जाय तो उसका अश्वमेध यज्ञका फल होता हैं ॥ ५३ ॥

स्वदेहंरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्यान निर्मथ नाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढ़वत् ॥१४॥
तिलेषुतैलं दधिनीव सर्पिरापः श्रोतरस्सै ।
रणीषु चाग्निः एवरेमानि गृह्यतेऽसौ
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥ १५ ॥
सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवर्पितम् ।
आत्मविद्या तपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परं
'तद्ब्रह्मो'पनीषत्पर मिति ॥ १६ ॥ श्वेताश्व०

प्राचीन समय के अग्नि होत्री जब हवनादि पवित्र क्रियाओं के लिये अग्नि प्रज्वलित किया करते थे तो वे आज की भांत अग्नि या दिया सलाई आदि आधुनिक साधनों का उपयोग न करके लकड़ी से ही लकड़ी का संघर्ष करके अग्नि उत्पन्न किया करते थे। आज भी कुछ अग्नि होत्री यत्र तत्र पाये जाते हैं। इस प्रकार अग्नि प्रज्वलित करने का यह मूल विधान है। जिन दो लकड़ियों का परस्पर संघर्ष होता है उनमें से नीचे वाली लकड़ी को अरणी और ऊपर वाली को उत्तराणी कहा जाता है। उक्त उपनिषत के श्लोका १४ का आशय इस प्रकार है, मुमुक्षु के लिये यह आवश्यक है कि—वह आत्म दर्शन करे आत्म दर्शन की विधि इस प्रकार कही गई है। अपने

शरीर अर्थात् देह की अरणी बनाया जाय और प्रणव के निरंतर जप को उत्तरारणी बनाया जाय और निरंतर ध्यान रूपिणि मंथन से आत्मदर्शन किया जाय यह १४ श्लोक का भावार्थ है। कहने में और पढ़ने में यह विधि सरल प्रतीत होती है परन्तु इसका अभ्यास सहज नहीं है शरीर को अरणी बनाना और अग्नि प्रज्वलित करना यह सच मुच अग्नि परीक्षा है और इस परीक्षा में प्रथम तो साहस करना ही और फिर सफलता पूर्वक उत्तीर्ण होना यह साधारण साधक का कार्य नहीं है। इसका फल भी साधारण नहीं है, परन्तु उसकी प्राप्ति के हेतु उक्त अग्नि परीक्षा में से सफलता पूर्वक उत्तीर्ण होना आवश्यक है। प्रणव का जप जिस उत्तरारणी की उपाधि दी गई है वह एक साधन मात्र है वह साधन इतना प्रभाव शाली अवश्य है कि कार्य्य-सिद्धि अवश्यंभावी परिणाम है। परन्तु इस साधन को अपनाना मुमुक्षु के अभ्य रस साहस उत्कट इच्छा और दृढ़ संकल्प पर निर्भर करता है। यदि यह हो तो शरीर रूपी अरणी और प्रणव जप रूपी उत्तरारणी वाले साधन तो सहज सुलभ तो है ही। मुमुक्षु के सामने सबसे बड़ी समस्या ब्रह्म साक्षात्कार की होती है। वह जप, तप, ध्यान समाधि आदि कई प्रकार कि क्रियायें इसी निमित्त किया करता है। श्लोक नं० १५ में यह स्पष्ट बतलाया गया है कि जिस प्रकार तिल में तेल दधि में घी स्रोत में जल अरणी में अग्नि रहती है। ठीक

उसी प्रकार शरीर में ब्रह्म का अर्थात् आत्मा का निवास है जो जो वस्तु निरंतर साथ में वा पास में हो उसी के लिये इतनी दौड़ धूप या खोज इसी का नाम "कांख में छोरा और गांव में हेरा" इसी को लोग माया कहते हैं। यदि यह आवरण दूर हो जाय तो फिर जो चीज पास में है उसकी खोज कैसी? आगे चल कर १७ वें श्लोक में यही दर्शन पा गया है कि सर्व व्यापी आत्म जो सर्वत्र ठीक उसी प्रकार निवास करता है जैसे दूध में घी। उसका साक्षात् दर्शन करना तभी संभव है जब कि असत् अर्थात् माया रूपी आवरण को सत्य रूपी तप से दूर कर दिया जाय। इसी साधना को आत्म विद्या या ब्रह्म कहा गया है, और इसी का नाम ब्रह्म साक्षात्कार है।

आतुर संन्यास

आतुरस्य संन्यासे प्रेषमात्रं हि केवलं ।
न श्रद्धादिन चान्यत स्याजम मध्यादि सर्पणं ॥
वक्तुमशक्तश्चे द्वाचासौमे न सैवही ॥
प्रेषं कुर्याते स्वयंधीरो मरणे समुपस्थिते ।
आतुराणांन्तु संन्यासे न विधि नैव चांक्रिया ॥
तनूं त्यजेध्धियोविप्रः कृत्वासंन्यासमात्मवान् ।
मानसीद्वाद्वा च काद्यापि प्रेषादेपात्र जायते ॥
कालाद्न्तरोथवा सद्यो 'ब्रह्मलोकंस' गच्छति ।
सन्यस्तमितियो ब्रूयात् प्राणैः कण्ड गतैरपि ॥
ससूर्यमंडलंभित्वा ब्रह्मलोके महीयते ।
ब्रह्मणोमरणेतेन ब्रह्मणासहधैर्यवान् ॥
महाभूतत्त्वयेप्राप्ते परेब्रह्माधिगच्छति इति ।
निर्णय सिध्यावपि आतुराणांश्च संन्यासे ॥
न विधि चक्रिया प्रेषमात्रं समुच्यार्थ संन्यासं।
तत्र पूरयेत् इति जाल श्रुतिरयित द्योतुरः ॥
स्यान्मनसा वाचा संन्यासदितिअत्र विप्रस्यै ।
वाधिकारः ब्राह्मणाः प्रवर्जनोती जावाल श्रुतेः ॥